BAMT(N)-301

हिन्दुस्तानी संगीत का शास्त्रीय सिद्धान्त– तबला एवं प्रयोगात्मक

पंचम सेमेस्टर

संगीत–तबला में स्नातक (बी0ए0)

पंचम सेमेस्टर

संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग
मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

BAMT(N)-301

हिन्दुस्तानी संगीत का शास्त्रीय सिद्धान्त– तबला एवं प्रयोगात्मक

संगीत–तबला में स्नातक(बी0ए0)
पंचम सेमेस्टर
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग
मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाईपास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पीछे,
हल्द्वानी – 263139
फोन नं0 : 05946–286000/01/02
फैक्स नं0 : 05946–264232
टोल फ्री नं0 : 18001804025
ई–मेल : **info@uou.ac.in**
वेबसाईट : **www.uou.ac.in**

अध्ययन मंडल समिति

अध्यक्ष
कुलपति,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संयोजक
निदेशक–मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रो0 पंकजमाला शर्मा(स.)
पूर्व विभागाध्यक्ष–संगीत विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

डॉ0 विजय कृष्ण(स.)
पूर्व विभागाध्यक्ष–संगीत विभाग
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

डॉ0 मल्लिका बैनर्जी(स.)
संगीत विभाग,
इग्नू, दिल्ली

प्रदीप कुमार(स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 द्विजेश उपाध्याय(आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 जगमोहन परगांई(आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 अशोक चन्द्र टम्टा(आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 प्रकाश चन्द्र आर्या(आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

पाठ्यक्रम संयोजन

प्रदीप कुमार
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 द्विजेश उपाध्याय
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 जगमोहन परगांई
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 अशोक चन्द्र टम्टा
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 प्रकाश चन्द्र आर्या
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

प्रूफ रिडिंग एवं फार्मेटिंग

डॉ0 द्विजेश उपाध्याय
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

डॉ0 प्रकाश चन्द्र आर्या
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

इकाई लेखन

1.	डॉ0 महेश पाण्डे	इकाई 1 एवं 3
2.	डॉ0 विजय कृष्ण	इकाई 2, 4, 5 एवं 6

कापीराइट : @उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
संस्करण : सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशन वर्ष : जुलाई 2025
प्रकाशक : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल
ई–मेल **: books@uou.ac.in**

नोट – इस पुस्तक की समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराईट संबंधी किसी भी मामले के लिए संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण सत्र न्यायालय–हल्द्वानी अथवा उच्च न्यायालय–नैनीताल में किया जाएगा। इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी चक्रमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

BAMT(N)-301

हिन्दुस्तानी संगीत का शास्त्रीय सिद्धान्त– तबला एवं प्रयोगात्मक

संगीत–तबला में स्नातक(बी0ए0) पंचम सेमेस्टर

इकाई	इकाई का नाम	पृष्ठ
इकाई–1	भारतीय संगीत का इतिहास – मध्य काल।	1-16
इकाई–2	प्राचीन, मध्य व आधुनिक काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्य।	17-30
इकाई–3	मार्ग संगीत, देशी संगीत, नायक, गायक, वाग्गेयकार, पंडित, कलावन्त, गीत, गन्धर्व, गान, अविरभाव, तिरोभाव, काकु व तान।	31-46
इकाई–4	तबला वादकों का जीवन परिचय(उ0 आबिद हुसैन, उ0 शेख दाऊद, उ0 लतीफ अहमद खां व बीरू मिश्र।	47-53
इकाई–5	पाठ्यक्रम की तालों रूपक, तिलवाड़ा एवं झूमरा ताल का परिचय एवं बोल समूह द्वारा ताल पहचानना; पाठ्यक्रम की तालों रूपक, तिलवाड़ा एवं झूमरा ताल के ठेके को दुगुन, तिगुन, चौगुन एवं आड़ लयकारी सहित लिपिबद्ध करना।	54-61
इकाई–6	पाठयक्रम की तालों रूपक, तिलवाड़ा एवं झूमरा ताल में तबले/पखावज की रचनाओं (पाठ्यक्रमानुसार) लिपिबद्ध करना।	62-71

इकाई 1 – भारतीय संगीत का इतिहास – मध्यकाल

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 मध्यकाल
1.3.1 पूर्व मध्यकाल
1.3.2 उत्तर मध्यकाल
1.4 सारांश
1.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0टी0(एन)–301) की पहली इकाई है। आप अभी तक भारतीय शास्त्रीय संगीत के मूलभूत तत्वों से परिचित हो चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में भारतीय संगीत के इतिहास के अन्तर्गत मध्यकाल का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत है। इस इकाई में मध्यकाल के विभिन्न समय कालों में संगीत की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। संगीत विद्वानों द्वारा रचित, इस काल के ग्रन्थों का उल्लेख भी इस इकाई में किया गया है, जो आपके संगीत ज्ञान की वृद्धि में उत्प्रेरक का कार्य करेगा।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ पाएंगे कि मध्यकाल में भारतीय संगीत की स्थिति क्या थी और विद्वानों द्वारा संगीत के प्रचार–प्रसार के लिए क्या–क्या प्रयास किए गए। आप इस इकाई में मध्यकाल के संगीत विद्वानों व उनके द्वारा रचित ग्रन्थों से भी परिचित होंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझ सकेंगे :–

- पूर्व मध्यकाल में संगीत के विषय में।
- उत्तर मध्यकाल में संगीत के विषय में।
- मध्यकाल में रचित संगीत सम्बन्धी ग्रन्थों के विषय में।
- पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर ग्रन्थ में प्राप्त संगीत सम्बन्धी सामग्री के विषय में।
- अमीर खुसरो के भारतीय संगीत में योगदान के सम्बन्ध में।
- संगीत सम्राट तानसेन के विषय में।
- मुगल शासकों के संगीत प्रेम के सम्बन्ध में।

1.3 मध्यकाल

मध्यकाल की अवधि 8 वीं शताब्दी से लेकर 18 वीं शताब्दी तक मानी जाती है। अध्ययन की सुविधा के लिये मध्य काल को मुख्य दो उपभागों में विभक्त किया जा सकता है–

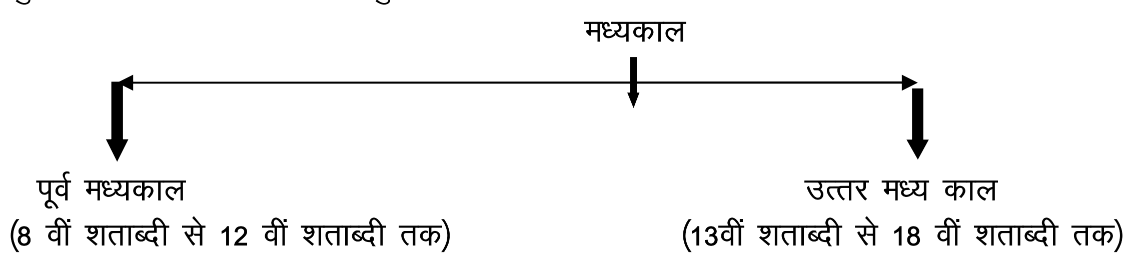

<u>1.3.1 पूर्व मध्यकाल (8 वीं शताब्दी से 13 वीं शताब्दी तक)</u> – पूर्वमध्यकाल की अवधि 8 वीं शताब्दी से 12 वीं शताब्दी तक मानी जाती है। इस समय भारतवर्ष में छोटे–छोटे राज्य स्थापित होने तथा

उनके आपस में युद्धरत रहने के कारण काफी निराजनक अराजक स्थितियॉ उत्पन्न हो गयी थी जिसका मानव जीवन तथा संगीत पर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। मौर्य तथा गुप्तकाल में संगीत की जो अविछिन्न धारा सार्वभौमिकता के रुप में स्थापित हो गयी थी, वह इस काल में वर्गो में विभक्त हो गयी। इस काल के विभिन्न राज्यों के शासक जो अधिकाशतः राजपूत थे, युद्धप्रिय होने के साथ ही साथ संगीत प्रेमी भी थे। इनके समय में दीपावली जैसे पर्वोत्सवों पर रासलीला नृत्य एवं प्रकाश नृत्य प्रस्तुत किया जाता था। विजयदशमी के शुभ अवसर पर नव दुर्गा की पूजा गा–बजाकर की जाती थी। मंदिरों में धूम–धाम से उत्सवों का आयोजन किया जाता था। इस काल में मंदिर संगीत(Temple Music) का विकास हुआ ।

राजपूत संगीतकारों का सम्मान करते थे। उनके राजदरबारों में अनेक संगीतज्ञों और कलाकारों को आश्रय मिला करता था। राज्याश्रय प्राप्त होने से संगीत कला का विकास भी हुआ। इस काल के कलाकारों की मनोवृति संकीर्ण एवं ईष्यापूर्ण थी। इस समय के कलाकार अपने संगीत ज्ञान को छिपाकर रखते थे। उनका संगीत पीढी–दर–पीढी मौखिक परम्परा से चला करता था। निःसंतान होने की स्थिति में उनका संगीत उन्हीं के साथ समाप्त हो जाता था। इस संकीर्ण मनोवृति के कारण भारतीय संगीत में घरानों का सूत्रपात हुआ।

जिन राजाओं ने संगीत को राज्याश्रय दिया उनके महलों में राग–रागनियों के चित्र भी बनाये गये। संगीत राज्याश्रय प्राप्त हो जाने के कारण वह सामन्तशाही बन गया था। संगीत जन–सामान्य के जीवन से हटता गया और उसमें सामान्तशाही–ऐश्वर्य प्रवेश करता गया। सामान्य जन–जीवन से शास्त्रीय संगीत पृथक हो जाने के कारण लोक संगीत का निर्माण होने लगा।

नौ वीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक भारत में संगीत की अच्छी उन्नति हुई। उस समय के ग्रन्थों में 'संगीत रत्नाकर' व 'गीत गोविन्द' को देखने से यह ज्ञात होता है कि जिस प्रकार आजकल राग–गायन प्रचलित है, उसी प्रकार उस काल में प्रबन्ध गायन प्रचलित था इसलिये इस काल को **'प्रबन्ध काल'** भी कहते हैं। पूर्व मध्यकाल मे 8 वीं0 शताब्दी से 12 वीं शताब्दी तक के मध्य अनेक संगीत ग्रन्थों की रचना हुई जिनका विवरण निम्नानुसार है :–

- संगीत मकरन्द – 7वीं और 9वीं शताब्दियों के मध्य में नारद नामक भारतीय विद्वान ने ''संगीत–मकरन्द'' नामक ग्रन्थ की रचना की। 'संगीत–मकरन्द' के लेखक 'नारदीय शिक्षा' के प्रणेता नारद से भिन्न प्रतीत होते हैं। इस ग्रन्थ में प्रथम बार पुरूष राग, स्त्री राग और नपुन्सक रागों का वर्गीकरण किया गया है। उन्होंने 'रागिनी' शब्द का प्रयोग नहीं किया है। इस ग्रन्थ में 20 पुरूष राग, 24 स्त्री राग और 13 नपुन्सक राग बताये गये हैं। साथ में स्वर, मूर्च्छना, राग, ताल आदि विषयों को लिया गया है। रागों के इस वर्गीकरण का आधार उनका रस सिद्धान्त है। नारद का कहना है कि रौद्र, अदभुत तथा वीर रस के लिए पुरूष राग, श्रृंगार, हास्य तथा करूण रस के लिए स्त्री राग और भयानकतथा शान्त रस की उत्पत्ति के लिये नपुन्सक रागों को प्रयोग में लाना चाहिए। उन्होंने इस ग्रन्थ में रागों की जातियॉ (सम्पूर्ण, षाड़व, व औड़व) तथा रागों के गायन समय को भी बताया है। उन्होंने इस ग्रन्थ में 19 अलंकारो का निरूपण किया है। इस ग्रन्थ में नखज, वायुज, चर्मज, लोहज और शरीरज नाम से नाद के पॉच भेदों का उल्लेख है तथा वीणा के अटठारह भेदों का वर्णन किया है। नारद ने 101 तालों को परिभाषित करके उनका वर्णन भी किया गया है। ताल शब्द की निष्पत्ति करके

दस प्राणों का उल्लेख किया है। मार्ग, मात्रा, क्रिया, अंग, ग्रह आदि पर भरतोक्त मान्यताओं की पुष्टि की है।''

- <u>गीत गोविन्द</u> – गीत गोविन्द की रचना 12वीं शताब्दी में जयदेव ने की। जयदेव उच्चकोटि के कवि होने के साथ–साथ उत्तम संगीतकार भी थे इसलिए इनको वाग्गेयकार भी कहा जा सकता है। गीत–गोविन्द जयदेव की अमर कृति है। यह ग्रन्थ संस्कृत में लिखा गया है। इसका अनुवाद दूसरी भाषाओं में भी हो चुका है। इस ग्रन्थ में राधा कृष्ण की प्रेम–लीलाओं का भी वर्णन किया गया है। यह संगीतमयी ग्रन्थ माना जाता है क्योंकि इसके पदो ंके ऊपर राग और तालों के नाम अंकित किए गए हैं। इस ग्रन्थ का स्थायी भाव प्रेम है परन्तु यह प्रेम भौतिक न होकर आत्मा–परमात्मा के मिलन का आध्यात्मिक प्रेम है। गीत–गोविन्द संगीत के क्षेत्र में बहुत उच्च स्थान रखता है। इसमें प्रबन्धों व गीतों का संग्रह है, किन्तु स्वरलिपि न होने के कारण उन्हें उसी प्रकार गाया नहीं जा सकता।

<u>1.3.2 उत्तर मध्य काल (13 वीं शताब्दी से 18 वीं शताब्दी तक)</u> – इस काल का प्रारम्भ 13वीं शताब्दी के बाद से 18वीं शताब्दी तक माना जाता है। इस काल में फारस और उत्तर भारतीय संगीत का मिश्रित रूप भली–भॉंति विकसित हुआ। अतः इसे विकास काल कहा जाने लगा। मुसलमानों का प्रभाव विशेषकर उत्तरी संगीत पर पड़ा। अतः उत्तरी संगीत धीरे–धीरे दक्षिणी संगीत से अलग होने लगा। अधिकांश मुसलमान राजाओं को संगीत से विशेष प्रेम था, अतः उन लोगों ने अपने दरबार में संगीतज्ञों को आश्रय दिया और संगीत को प्रोत्साहन दिया। इस काल में संगीत विकास का क्रम निम्नानुसार है :–

- <u>अलाउद्दीन खिलजी (1269–1316)</u> – इनके शासन काल में संगीत का बहुत विकास हुआ। खिलजी ने संगीत के प्रचार–प्रसार में अत्यन्त योगदान किया। इनके दरबार में अमीर खुसरो और गोपाल नायक जैसे उच्चकोटि के संगीत कलाकार थे।

- <u>अमीर खुसरो</u> – यह अलाउद्दीन के दरबार में प्रमुख रत्न थे। खुसरो फारसी के प्रसिद्ध कवि और महान् संगीतकार थे। अमीर खुसरो को कौल, कलवाना, कव्वाली, गजल और तराना आदि का आविष्कारक माना जाता है। सितार और तबले के आविष्कार का श्रेय भी अमीर खुसरो को ही दिया जाता है। इसके बारे में विद्वानों में मतभेद हैं। यदि इनको आविष्कारक न भी माना जाए तो भी यह जरूर कहा जा सकता है कि अमीर खुसरो ने इन वाद्यों के प्रचार के लिए विशेष प्रयत्न किए। अमीर खुसरो ने अपना समस्त जीवन ही संगीत के लिए व्यतीत कर दिया।

अमीर खुसरो ने हिन्दुस्तानी संगीत में फारसी संगीत का मिश्रण कर राग–रागिनी की एक नवीन प्रणाली का आविष्कार किया। हिन्दुस्तानी 6 राग और 36 रागनियों तथा ईरानी 12 मुकामों का समन्वय किया जिसके परिणामस्वरूप हिन्दुस्तानी संगीत में नवीनता के दर्शन हुए। अमीर खुसरो ने कोल, कलवाना, नक्शेगुल, तराना आदि का आविष्कार किया। इनके द्वारा निर्मित रागिनियों में ईमन रागिनी गायकों में आज भी विशेष प्रिय है। उन्होंने भारतीय 'हिण्डोल' तथा फारसी 'मुकाम' राग मिलाकर 'इयामन' या 'इमन' राग की सृष्टि की थी।

- <u>गोपाल नायक</u> – खिलजी काल के दूसरे प्रमुख संगीतकार गोपाल नायक थे। गोपाल नायक देवगिरि राज्य के प्रसिद्ध गायक थे। 1294 ई0 में अलाउद्दीन ने देवगिरि पर हमला किया और विजय प्राप्त की। विजय प्राप्त करने के बाद अलाउद्दीन वहां के बहुत सारे गायकों को बन्दी बनाकर दिल्ली ले गया क्योंकि वह संगीत प्रेमी था। गोपाल हिन्दू ब्राह्मण थे। उनको संस्कृत भाषा का काफी ज्ञान था। वह संगीत के क्रियात्मक पक्ष में ही निपुण नहीं थे बल्कि संगीत के सैद्धान्तिक पक्षों का भी भलीभांति ज्ञान रखते थे। इन्होंने ख्याल शैली के विकास के लिए बहुत यत्न किए। बडहंस, पीलू आदि रागों का आविष्कारक इनको माना जाता था। अलाउद्दीन खिलजी के समय में ही 13 शताब्दी के उत्तरार्ध में महान संगीतज्ञ शारंगदेव ने भारतीय संगीत के आधार एवं अमर ग्रंथ संगीतरत्नाकर की रचना की थी।

- <u>संगीत रत्नाकर</u> – 13 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में शांरगदेव ने 'संगीत रत्नाकर' नामक ग्रन्थ लिखा था। इनमें गायन, वादन तथा नृत्य तीनों का वर्णन है। इस ग्रन्थ में स्वराध्याय, राग विवेकाध्याय, प्रकीर्णाध्याय, प्रबन्धाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय और नर्तनाध्याय हैं। प्रथम अध्याय मे नाद का स्वरूप, नादोत्पत्ति और उसके भेद, सारणा–चतुष्टय, ग्राम–मूर्च्छना, तान निरूपण, स्वर और वर्ण, अलंकार और जातियों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

  द्वितीय अध्याय में ग्राम राग और उनके विभाग तथा रागांग, भाषांग शब्दों का स्पष्टीकरण और देशी राग और उनके नाम आदि दिये गये हैं। तृतीय अध्याय में वाग्गेयकार के लक्षण, गीत के गुण–दोष, गायक के गुण–दोष, और स्थाय इत्यादि का विवरण है। चतुर्थ अध्याय मे गान के निबद्ध–अनिबद्ध भेद, धातु व प्रबन्ध के भेद और अंगो का विवरण है।

  पंचम अध्याय में तालों के विषय में तथा षष्ट अध्याय मे तत्, सुषिर, अवनद्ध और घन वाद्यों के भेद, वादन विधि और वाद्यों तथा वादकों के गुण दोष दिये गये हैं। सप्तम अध्याय नृत्य और नाट्य पर है। इसमें नर्तन सम्बन्धी विवरण दिया गया है।

- <u>बाबर काल में संगीत</u> – मुगलों के प्रथम बादशाह जहीरूद्दीन मुहम्मद बाबर थे। बाबर स्वयं एक अच्छे संगीतकार थे। बाबर गाने में प्रवीण था। गायन विधा में दक्षता के साथ–साथ संगीतकारो का आदर–सम्मान करना तथा उनकी कला से प्रभावित होकर उन्हें पुरस्कृत भी करता था। बाबर के समय भारतीय संगीत उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होता गया। इस काल में कल्लिनाथ ने 'संगीत रत्नाकर' की टीका लिखी। इस काल में भक्ति आन्दोलन ने जोर पकड़ा। भक्ति–आन्दोलन के प्रचारक कबीर, रामानन्द, चैतन्य, नामदेव और वैष्णव मत के अनुयायी आदि ने परमात्मा के गुणों का गायन संगीत के माध्यम से किया। भक्ति–आन्दोलन के प्रचारकों ने संगीत की अपार शक्ति का अनुभव कर लिया था। बाबर युग में धर्म और संगीत का सम्मिश्रण हुआ।

- <u>हुमायूँ काल में संगीत</u> – बाबर के बाद उसका पुत्र नासिरूद्दीन हुमायूँ गद्दी पर बैठा। हुमायूँ के शासन काल में भी संगीत एवं संगीतकारों को मान–सम्मान प्राप्त हुआ। विद्वानों के मतानुसार हुमायूँ ने संगीत को संकट कालीन अवस्था में भी नहीं छोड़ा। उन्हें संगीत अत्यन्त प्रिय था। बाबर का विश्वास था कि संगीत से मानव जीवन में एक नवीन रोशनी आती है, एक नवउत्साह का संचार होता है इसलिए वह अंत समय तक संगीत का महान उपासक बना रहा। हुमायूँ काल में नये–नये भजन भी

निर्मित हुए। इन भजनों द्वारा जहॉ एक ओर संगीत का प्रचार–प्रसार हुआ वही दूसरी ओर आध्यात्मिक ज्ञान भी आम जनता में प्रसारित हुआ। सूफी मत का भी अधिक प्रचार हुआ। सूफी कवियों ने भी अपनी रचनाओं का संगीत के माध्यम से प्रचार किया। इसके परिणाम स्वरूप नैतिक चरित्र भी उन्नत हुआ। इसके शासनकाल में कर्नाटक के प्रसिद्ध ग्रन्थकार रामामात्य जी ने 'स्वरमेल कलानिधि' की रचना की।

- <u>राग तरंगिणी</u> – इसी काल की यह सर्वप्रथम पुस्तक लोचन कृत है। इसकी रचना 15वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में मानी जाती है। इनके अनुसार शुद्ध थाट काफी है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि सम्पूर्ण रागों को कुल 12 मेलों (थाटों) में विभाजित किया गया है। आधुनिक थाट राग वर्गीकरण का बीजारोपण 'राग–तरंगिणी' में हुआ ऐसा विद्वत लोगों का विश्वास है।

- <u>मानसिंह तोमर</u> – (1486–1516)ग्वालियर के संगीत सम्प्रदाय का प्रारम्भ राजा मानसिंह तोमर के समय से होता है। इन्हीं के दरबार में प्रसिद्व नायक बक्सू रहते थे जिनका सुमधुर संगीत तानसेन के बाद ही अपना अलग स्थान रखता है। बक्सू मानसिंह तोमर के पुत्र, राजा विक्रमाजीत के दरबार में भी रहे।

सर डब्लू0 आंसले के अनुसार संगीत पर ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर की आज्ञा से संकलित किए हुये ''मान कुतूहल'' का अनुवाद फकीरउल्ला द्वारा ''राग दर्पण'' के नाम से किया था।

- <u>बैजू बावरा</u> – राजा मानसिंह तोमर के दरबार में बैजू बावरा एक प्रसिद्ध गायक थे। संगीत के महान ग्रन्थ ''राग कल्पद्रुम'' में तानसेन और बैजू के अनेक ध्रुपद संकलित हैं। कहा जाता है कि बैजू के सहयोग से ही राजा मानसिंह तोमर ने ध्रुपद शैली का परिष्कार और प्रचार किया। राजा मानसिंह तोमर ने अपनी रानी मृगनयनी को संगीत शिक्षा देने के लिए बैजू वावरा को संगीत शिक्षक नियुक्त किया था। गुजरी–तोडी और मंगल गुजरी आदि राग मृगनयनी के नाम पर बने हैं। मृगनयनी गूजर कुल की थी और राइ गॉव की दरिद्र किसान की कन्या थी। बैजू ने अनेक लोकप्रिय गीत व ध्रुपद लिखे हैं। बैजू को वीणा–वादन पर भी उत्तम अधिकार था। बैजू स्वामी हरिदास के शिष्य थे।

बैजू बाबरा ने होरी गायन शैली का तथा धमार ताल का आविष्कार किया। बैजू ने कुछ नए रागों जैसे लंकदहन, सारंग, धूलिया मल्हार आदि की रचना की।

- <u>सुल्तान हुसैन शर्की काल में संगीत (1458–1499)</u> – जौनपुर के राजा सुल्तान हुसैन शर्की एक महान संगीतकार थे। कहा जाता है कि सुल्तान हुसैन शर्की ने ख्याल शैली का आविष्कार किया किन्तु इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। ख्याल के आविष्कार के संबन्ध में भले ही मतभेद हो परन्तु यह अवश्य कहा जाता है कि सुल्तान हुसैन शर्की ने ''ख्याल शैली'' के प्रचार–प्रसार के लिए विशेष योगदान दिया। इन्होंने कई नवीन रागों की रचना की थी–जैसे जौनपुरी तोड़ी, सिन्धी भैरवी, श्याम के विभिन्न प्रकार जैसे मल्हार श्याम, बसन्त श्याम आदि।

- <u>अकबर काल में संगीत</u> – अकबर एक अच्छा शासक होने के साथ–साथ संगीत–प्रेमी भी थे। अकबर स्वयं एक महान संगीतज्ञ थे। संगीत का प्रेमी होने के कारण उसने नक्काड़ा नामक वाद्य को

बजाना सीखा और इसमें निपुणता हासिल की। अकबर के काल में संगीत का अत्यधिक प्रचार–प्रसार हुआ।

अकबर के जन्म के समय उसके पिता हुमायूँ को भारत छोड़कर फारस भागना पड़ा। 12 वर्ष की अल्पायु में ही अकबर को राज्यभार संभालना पड़ा। अकबर एक महत्वाकांक्षी शासक था। उसने अपने राज्य का विस्तार पश्चिमी सीमा के कन्धार से पूर्व में आसाम तक और उत्तर में कश्मीर से दक्षिण में अहमद नगर तक किया। अकबर एक प्रतिभाशाली शासक ही नहीं, वरन् समाज सुधारक भी था। उसने हिन्दू–मुसलमानों को एक सूत्र में बांधा। जाति–भेद की भावना को दूर किया।

अकबर के राज्यकाल में समस्त कलाओं का उत्कर्ष हुआ जिससे कलाकारों और विद्वानों को दरबार में उच्चपद और सम्मान प्राप्त हुआ। अकबर का राज्यकाल संगीत में स्वर्ण–युग कहा जाता है क्योंकि उसके राज्यकाल में संगीत कला सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गयी थी ।

अकबर ने अपने दरबार में गायकों तथा वादकों को विशेष रूप से स्थान दिया। अकबर संगीतकारों का बहुत आदर करते थे और समय–समय पर वह उन्हें पुरस्कार प्रदान कर प्रोत्साहित भी करते थे। इनके दरबार में दूसरी रियासतों के कलाकार भी अपने कला–प्रदर्शन के लिए आते थे। इनके दरबार में तानसेन, नायक बैजू, तानतरंग खां, गोपाल, विचित्र खां, रामदास, सुरज्ञान, मियाचॉद, आदि प्रमुख संगीतकार थे।

- **तानसेन** – भारतीय संगीत के क्षेत्र में तानसेन को संगीत का सम्राट कहा जाता है। तानसेन द्वारा संगीत के क्षेत्र में दिया गया योगदान अद्वितीय है। तानसेन का बचपन का नाम तन्ना मिश्र था। तानसेन बचपन से ही बहुत नटखट था। पढ़ाई की जगह प्राकृतिक वातावरण में बहुत मन लगाता था और जानवरों की आवाज की नकल करने में वह बहुत निपुण था। एक बार स्वामी हरिदास जी अपनी शिष्य–मण्डली के साथ जंगल से जा रहे थे, तो तानसेन ने उनको शेर की आवाज निकालकर डराया। जब स्वामी जी को यह पता चला कि यह आवाज किसी शेर की नहीं किसी बच्चे की है, तो वह उसकी योग्यता से बहुत प्रभावित हुए और उसको अपना शिष्य बनाने का निर्णय किया। तानसेन ने स्वामी जी से संगीत की शिक्षा हासिल करने के बाद संगीत के क्षेत्र में बहुत निपुणता प्राप्त की। उनकी प्रसिद्धि का नाम सुनकर राजा राम चन्द्र ने आपको दरबारी गायक के तौर पर अपने दरबार में रख लिया। तानसेन के समय में प्रमुख गायन शैली ध्रुपद थी। तानसेन ने अनेक ध्रुपदों की रचना की और उनका गायन किया। जिसकी चर्चा सुनकर अकबर ने तानसेन को दिल्ली में बुलाया। तानसेन का गायन सुनकर अकबर बहुत प्रभावित हुए और तानसेन को रत्न की उपाधि देकर दरबार में रख लिया। अकबर ने 'कण्ठाभरणवाणीविलास' की उपाधि देकर तानसेन को सम्मानित किया।

तानसेन ने दरबारी कान्हड़ा, मियां की तोड़ी, मियां की सारंग, मियां की मल्हार आदि रागों की रचना की। दरबारी कान्हड़ा को छोड़कर बाकी रागों के साथ मियां शब्द जोड़ा गया क्योंकि मियां शब्द का प्रयोग तानसेन के नाम के साथ किया जाता था। यह सारे राग उत्तर भारत में आज भी प्रचलित है। तानसेन से अकबर के दरबार के दूसरे कलाकार ईर्ष्या करते थे। उन्होंने अकबर बादशाह को तानसेन से दीपक राग सुनने के लिए कहा क्योंकि वह जानते थे कि जब तानसेन यह राग गाते थे तो तपिश पैदा हो जाती थी। इस राग को गाने के बाद तानसेन की हालत बहुत खराब हो गई। इस गर्मी को कम करने के लिए तानसेन की पुत्री ने मल्हार राग गाया। इस तरह के और भी उदाहरण मिलते हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि तानसेन ने संगीत की अच्छी साधना की थी। तानसेन

ध्रुपद गायकी के सिद्ध गायक थे। तानसेन ने ध्रुपद गायन शैली को उच्चकोटि तक पहुंचाया। आज भी तानसेन के बनाये ध्रुपद प्राप्त होते हैं। इनके द्वारा लिखित ग्रन्थों में संगीतसार, रागमाला, गणेश स्त्रोत मुख्य हैं जिनमें से गणेश स्त्रोत अप्राप्त है।

तानसेन के पुत्र सूरत सेन और विलास खां ने उनकी संगीत–परम्परा को आगे बढ़ाया। इनका घराना रबाबियों का घराना कहलाया। इनकी लड़की–दामाद, जो वीणा बजाने में निपुण थे, बीनकार कहलाए। तानसेन की वंश परम्परा सेनीया घराना कहलायी।

- **रामदास** – अकबरी दरबार के संगीतज्ञों की सूची में रामदास का नाम दूसरे स्थान पर आता है। आप रामदास मल्हार के आविष्कारक कहे जाते हैं तथा उस समय के महान कलाकार सुरज्ञान खॉं के पिता भी थे। सुरज्ञान खॉं का वास्तविक नाम सुजान दास था, और सुरज्ञान खॉं की उपाधि उन्हें मिली थी। वे अकबर के दरबार में 1602 तक रहे। आपने अनेक पदों की रचना की।
- **चॉंद खॉं व सूरज खॉं** – अकबर दरबार के संगीतज्ञ थे। सरमाया–ए–इशरत और सौत–उल–मुबारक ग्रन्थों के अनुसार इनके नामकरण का कारण यह था कि चॉंद खॉं रात्री कालीन गाये जाने वाले राग रागिनी गाते थे और उनका उपनाम 'शशि' था जबकि सूरज खॉं दिन में गाये जाने वाले राग गाते थे और अपना उपनाम 'रवि' प्रयुक्त करते थे।

इस काल में वाद्यों में झांझर, बीन, रबाव, किन्नरी, सुरमण्डल जलतरंग, पखावज, उपंग, शहनाई, सारंगी, कठसाल मुहचंग, खंजरी, मृदंग, डफर, झांझ, शंख, श्रृंगी, भेरी, नगाड़ा, दुंदुभि, डोल, वेणु जिनांक, मंजीरा, मुरली आदि प्रयोग में लाये जाते थे।

अकबर के समय में वृन्द वादन को नौबत के नाम से जाना जाता था। आइन–ए–अकबरी में इस प्रकार का उल्लेख है कि अकबर के नक्कारखाने में 14 बड़े नौबत, 20 छोटे आकार के नक्कारे, 4 ढोल, 4 कनी, 4 सुरनई, उनके साथ आधार स्वर के वाद्य 2 श्रृंगी या सींग तथा 3 जोड़े बड़े आकार के आघाती (Symbol) और नक्कारा का उल्लेख मिलता है।

भारत में भक्ति की परम्परा बहुत प्राचीन है। भक्ति मनुष्य को दुःख, सुख, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि की भावनाओं से मुक्त करवा देती है। भक्ति का प्राचीन स्वरूप वेदों के द्वारा प्राप्त होता है, परन्तु मध्यकाल में सम्पूर्ण भारत में भक्ति की लहर चली जिसको भक्ति–आन्दोलन का नाम दिया गया। भक्ति आन्दोलन के प्रचारकों ने आम जनता को भक्ति के बुनियादी तत्वों का ज्ञान संगीत के माध्यम से दिया। इन पीरों–फकीरों और संतों ने संगीत को ही अपना प्रमुख साधन माना। इस प्रकार मध्यकाल में हमारे भक्ति संगीत की प्रमुख विभूतियां मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास, कबीरदास आदि प्रमुख थे।

- **स्वामी हरिदास** – स्वामी हरिदास जी तानसेन के गुरू थे तथा आध्यात्मिक संगीत के महान् संगीतज्ञ थे। स्वामी हरिदास जी ने ब्रज भाषा में अनेक ध्रुपदों की रचना की और उन्हें गेय रूप दिया। स्वामी हरिदास उत्तर भारत के महान् वाग्गेयकार थे। स्वामी जी गायन तथा वादन दोनों कलाओं में प्रवीण थे। इन्होंने अनेक शिष्य तैयार किए जिनमें से तानसेन, बैजू बावरा, गोपाल नायक, मदनलाल, रामदास, पं0 सोमनाथ आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

अकबर काल में पुण्डरीक विट्ठल ने सद्रागचन्द्रोदय, रागमाला, रागमंजरी, नर्तन निर्णय, रामामात्य ने स्वरमेलकलानिधि, सूरदास ने सूरसागर, सूररचनावली आदि प्रमुख ग्रन्थों की रचना की।

गुरू अर्जुन देव जी ने अपनी और पांच गुरूओं की वाणी के अतिरिक्त दूसरे भक्तों पीर, फकीरों की वाणियों को इकट्ठा करके आदि गुरू ग्रन्थ साहिब संकलित किया है। उनका मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक पक्ष को उभारना था न कि सांगीतिक पक्ष को। संगीत का तो उन्होंने एक मात्र सहारा ही लिया।

- **स्वरमेलकलानिधि** — इसी समय दक्षिणी संगीत विद्वान् रामामात्य ने इस ग्रन्थ की रचना की। इसमें पांच प्रकरण हैं — स्वर प्रकरण, उपोद्धात प्रकरण, वीणा प्रकरण, मेल प्रकरण और राग प्रकरण। स्वर प्रकरण में सात शुद्ध और सात विकृत स्वर माने गए हैं। वीणा प्रकरण में वीणा की डांड पर आपने 14 स्वर स्थापित किए हैं। मेल प्रकरण में 20 थाट का वर्णन है। राग प्रकरण में 20 थाट के अर्न्तगत 63 जन्य रागों का वर्णन मिलता है।

- **सद्रागचन्द्रोदय** — इस ग्रन्थ में दक्षिणी संगीत का विवरण है। इसमें पुण्डरीक विटठल ने 19 थाटों को मानकर उनमें दक्षिण के रागों का वर्गीकरण किया है।

इस प्रकार अकबर के समय में भारतीय संगीत उन्नति के उच्च शिखर तक पहुॅंच चुका था।

- **जहॉगीर (1605—1627)** — जहॉगीर अकबर के समान ही कला और साहित्य प्रेमी थे। उन्हें सितार वाद्य में विशेष रूचि थी जिस कारण इस युग में सितार वादन की विशेष प्रगति हुई। इनके दरबार में छत्तर खॉ, विलास खॉ, परवेजदाद खुर्रमदाद, मक्खू इत्यादि प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। जहॉगीर नामा में उल्लेख मिलता है कि शौकी नामक गजल गायक को जहॉगीर ने आनन्द खॉ की उपाधि प्रदान की।

1610 में दक्षिण के विद्वान पं0 सोमनाथ ने ''रागविबोध'' नामक पुस्तक लिखी। इसमें भी उत्तरी और दक्षिणी संगीत को एक में समन्वित करने का प्रयत्न किया गया है।

1625 ई0 में पंडित दामोदर द्वारा संगीत दर्पण की रचना हुई। इस ग्रन्थ के दो अध्याय हैं — पहला स्वर अध्याय और दूसरा राग अध्याय। यह ग्रन्थ हिन्दी, फारसी, गुजराती आदि भाषाओं में लिखा गया है। इस ग्रन्थ में रागों का विशेष वर्णन किया गया है।

- **रागतत्व विबोध** — सोमनाथ के द्वारा लिखित रागतत्व विबोध भी इसी काल की रचना है। इन्होंने कुल 22 श्रुतियां मानीं और इन्होंने सात शुद्ध और 15 अशुद्ध स्वरों का वर्णन 23 मेलों के अर्न्तगत किया।

- **शाहजहॉ (1627—1658)** — जहांगीर की मृत्यु के पश्चात् उनका बेटा शाहजहां गद्दी पर बैठा तो उसने भी अनेक संगीतकारों को राज्याश्रय देकर अपने कला प्रेमी होने का प्रमाण दिया। यह शासक संगीत प्रेमी होने के साथ—साथ गायक भी था। शाहजहां का सुर सुमधुर एवं हृदयग्राही था। ये उर्दू भाषा के गीत बहुत अच्छी तरह से गाते थे। शाहजहॉ के समय से ही संगीत की स्थिति में गिरावट आने लगी थी क्योंकि इस समय अधिकांशतः संगीतज्ञ अनपढ़ थे।

वास्तव में शाहजहॉ के काल से नृत्य और गायन गणिकाओं के हाथ में पूर्णरूपेण चला गया था। संगीत में निम्नता की नींव इस काल पड़ गयी थी। इस काल में संगीतज्ञों की प्रतिष्ठा इतनी उच्च व दैदीप्य मान नहीं रही जितनी कि प्राचीन काल में थी। शाहजहॉ के दरबार में जगन्नाथ, लाल खॉ, विलास खॉ, दिरग खॉ, ताल खॉ आदि संगीतज्ञ थे। जगन्नाथ को **कविराज** और दिरग खॉ को **गुण**

समुद्र की उपाधि शाहजहॉ ने प्रदान की। समय–समय पर संगीत सम्मेलन आयोजन किये जाते थे। संगीत प्रतियोगिताएं आयोजित कर विजेताओं को पुरस्कृत भी किया जाता था।

- **संगीत पारिजात** – यह पुस्तक 1650 ई0 में पंडित अहोबल द्वारा लिखी गई। दीनानाथ ने फारसी में इसका अनुवाद किया। इस ग्रन्थ में प्रथम बार वीणा के तार पर बारह स्वरों की स्थापना की गई है। संगीत पारिजात का शुद्ध सप्तक उत्तरी भारत के काफी थाट और दक्षिणी भारत के खरहरप्रिया के सदृश्य है। पं0 अहोबल ने 29 विकृत स्वरों के नाम तो दिये हैं, किन्तु राग अध्याय में कई स्वर छोड़ दिये हैं। वास्तव में उन्होंने एक ही स्वर के लिए कई नाम प्रयोग किये हैं।

- **औरंगजेब(1658–1700)** – औरंगजेब के शासनकाल में संगीत को इतना प्रोत्साहन नहीं मिला क्योंकि वह संगीत प्रेमी नहीं था परन्तु फिर भी संगीत के साधक एकान्त में बैठकर संगीत की साधना करते रहे। इनके शासनकाल में हृदयनारायण ने हृदयकौतुक, हृदय प्रकाश, भावभट्ट ने अनूप संगीत विलास, अनूप संगीत रत्नाकर, अनूप प्रकाश, व्यंकटमुखी ने चतुर्दण्डि प्रकाशिका आदि प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की।

- **अनूप संगीत रत्नाकर, अनूप विलास, अनूप प्रकाश** – भावभट्ट ने यह तीनों ग्रन्थ लिखे हैं। इन ग्रन्थों में संगीत के पारिभाषिक तत्व जैसे स्वर, ग्राम, मूर्छना, अलंकार आदि का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त ध्रुपद गायन शैली और रागों के भेदों के बारे में बताया।

- **हृदयकौतुक और हृदय प्रकाश** – हृदय नारायण के हृदयकौतुक और हृदय प्रकाश नामक ग्रन्थों की रचना औरंगजेब के समय में ही मानी जाती है। इनमें उन्होंने वीणा तार की लम्बाई के आधार पर स्वरों की स्थापना की है। इनमें संगीत के पारिभाषिक तत्वों जैसे वादी, संवादी, विवादी, तान आदि का वर्णन किया है। इन्होंने एक राग, जिसका नाम हृदयराग रखा, की रचना भी की।

- **चतुर्दन्डिप्रकाशिका** – यह ग्रंथ 1660ई0 में दक्षिणी के पं0 व्यंकटमुखी द्वारा लिखा गया है। उन्होंने यह सिद्ध किया कि उस समय के स्वर–सप्तक से अधिक से अधिक 72 थाटों की रचना हो सकती है तथा एक थाट से कुल 484 राग उत्पन्न हो सकते हैं। यद्यपि ग्रन्थकार ने एक सप्तक में 12 स्वर माने हैं, किन्तु एक स्वर के कई नाम भी स्वीकार किये हैं।

- **बहादुर शाह प्रथम** – औरंगजेब का सबसे छोटा प्रिय पुत्र ''मुअज्जम'' बहादुर शाह प्रथम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ''रागमाला', 'ध्रुवपद ''संग्रह'' में इसके नाम से अंकित ध्रुवपद मिलते हैं। सुप्रसिद्ध ''सदारंग'' भी इनके दरबार में थे।

- **मोहम्मद शाह रंगीले (1719–1748)** – बहादुरशाह का पोता मुहम्मद शाह 1719 ई0 में गद्दी पर बैठा। मुहम्मद शाह संगीतकला का अत्यन्त प्रेमी था। इसी कारण उसका उपनाम 'रंगीला' पड़ा इनके दरबार में गायकों के दो प्रमुख वर्ग 'कलावन्त' और कव्वाल थे। इनके दरबार में सदारंग, अदारंग, इच्छा

बरस आदि सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ थे जिन्होंने ख्याल बनाये और अपने शिष्यों को सिखाये। यद्यपि वे स्वयं ध्रुवपद गाते थे और अच्छे वीणावादक भी थे। अपनी बंदिशों में इन्होंने सम्राट का नाम मुहम्मद शाह रंगीले दिया है। इसी युग में ख्याल गायकी का प्रचार बहुत तीव्रता से हुआ। इसी युग में 'सितार' वाद्य का आविष्कार हुआ।

'टप्पा' गायन शैली का प्रारम्भ भी इसी काल में 'गुलाम नवी' द्वारा हुआ। गुलाम नवी अच्छे गायक और कवि थे। वह पंजाब के रहने वाले थे और 'मियॉ शोरी' के नाम से प्रसिद्ध हुये। 'टप्पा' गायन शैली अन्य गायन शैलियों से भिन्न प्रकार की है। इसका गायन संक्षिप्त, चंचल प्रकृति का होता है। इसके लिये गले की तैयारी की आवश्यकता होती है। काफी, 'झिंझोटी', 'खमाज', भैरवी आदि रागों में टप्पा की बंदिशें विशेषतया गायी जाती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि जहॉ रंगीले का राज्यकाल शासन की दृष्टि से तो अवनति की दशा की ओर जा रहा था, वहीं संगीत के क्षेत्र में संगीतज्ञों ने नये–नये मार्गों की खोज कर ऐसी नवीन गायन शैलियों का प्रचार कर दिया जिसने प्राचीन ध्रुवपद, धमार गायन शैली के स्थान पर ख्याल, टप्पा जैसी नवीन शैलियों को प्रचारित–प्रसारित कर दिया।

मुगल सम्राट अहमदशाह के दरबार में 'सुरभावन' और आलम ध्रुवपदकार हुए। 1797ई0 में शाह आलम का शासन आरम्भ होता है। शाहआलम भी अत्यन्त संगीत प्रेमी शासक था। उसने स्वयं एक गेय काव्य संग्रह की रचना 'नादिरातिशाही' नाम से की थी। इसी समय दक्षिण के प्रसिद्ध संत संगीतज्ञ त्यागराज का जन्म हुआ।

अंतिम मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर कुशल शायर एवं सहृदय व्यक्ति था। वह 'संगीत' द्वारा जीवन में प्रेरणा लेता रहा। इनके राज्यकाल में संगीत के लिये उपर्युक्त परिस्थितियां नहीं थी और परिणाम स्वरूप दरबार में संगीत का अनुशीलन लगभग बन्द हो गया था। राज्य की दयनीय दशा के कारण दिल्ली के अधिकांश कलाकार देश की विभिन्न रियासतों में चले गये जहॉ नवाबों एवं राजाओं ने इन संगीतज्ञों को आश्रय प्रदान किया।

● **संगीत–ग्रन्थों की रचना** – पूर्व–मध्यकाल मे रचित ग्रन्थो संगीत मकरन्द, गीत–गोविन्द आदि के अतिरिक्त उत्तर–मध्यकाल मे भी अनेक महत्वपूर्ण संगीत ग्रन्थों की रचना हुई जिनमें निम्नलिखित विशेष उल्लेखनीय है :–

1. शारंगदेव कृत संगीत–रत्नाकर
2. लोचन कृत रागतरंगिणी
3. कल्लिनाथकृत संगीत–रत्नाकर की टीका
4. रामामात्यकृत स्वरमेलकलानिधि
5. पुण्डरीकविट्ठलकृत सद्रागचन्द्रोदय
6. रागमाला
7. रागमंजरी
8. नर्तननिर्णय
9. सोमनाथकृत राग–विबोध
10. पं0 दामोदर कृत संगीतदर्पण
11. व्यंकटमुखीकृत चतुर्दन्डिप्रकाशिका

12. पं0 अहोबलकृत संगीत–पारिजात
13. हृदयनारायणदेवकृत हृदय–कौतुक और हृदय–प्रकाश
14. पं0 श्रीनिवासकृत राग–तत्व–विवोध
15. पं0 तुलाजीराव भोंसले कृत संगीत–सारामृत और राग–लक्षणम्
16. भावभट्टकृत अनूप–विलास, अनुप प्रकाश और अनूप संगीत रत्नाकर आदि।

इस युग ने भारतीय संगीत को भक्ति–संगीत के एक अनुपम भण्डार से समृद्ध किया। कबीर, सूर, तुलसी और मीरा के पद, भजन और गीत भारतीय संगीत की अमूल्य निधि है।

मुगल–शासन काल में संगीत के शास्त्र एवं क्रियात्मक पक्ष दोनो समृद्ध हुए। जहॉ लोचन, रामामात्य, सोमनाथ एवं पं0 अहोबल आदि संगीत–शास्त्रकारों ने अपने संगीत–शास्त्र–ग्रन्थो में भारतीय संगीत के शास्त्र–पक्ष को समृद्ध किया वहीं स्वामी हरिदास, तानसेन, नायक बैजू नायक गोपाल, नायक बख्श, विलास खॉ, लाल खॉ, छतर खॉ, दिरंग खॉ, सदारंग, अदारंग, मुहम्मदशाह रंगीले एवं हिन्दी के भक्ति–संगीत गायकों सूर, तुलसी, मीरा आदि ने भारतीय संगीत के क्रियात्मक पक्ष को पूर्ण समृद्धता प्रदान की।

इन्हीं कारणों से भारतीय संगीत के इतिहास मे मध्य–युग 'स्वर्ण–युग' के नाम से अभिहित किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

क) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1) मध्यकाल को कितने भागों में बॉट सकते हैं? उत्तर मध्यकाल के विषय में विस्तार से बताइये।
2) संगीत मकरन्द किसने लिखी तथा इस ग्रंथ में किन बातों का उल्लेख है? संक्षेप में बताइये।
3) संगीत रत्नाकर की रचना किसने की? संगीत रत्नाकर की विषय–वस्तु के विषय में विस्तार से वर्णन कीजिए।
4) अलाउद्दीन खिलजी का शासनकाल का समय क्या था व उसके दरबार में कौन–कौन संगीतज्ञ थे?
5) राग तरंगिणी पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
6) अकबर के समय में संगीत की उन्नति पर विस्तार से वर्णन कीजिए।
7) अकबर के शासनकाल में किन्हीं 2 प्रमुख संगीतज्ञों के विषय में बताइये।
8) संगीत पारिजात पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।

ख) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1) शारंगदेव के अनुसार कितने ग्राम राग होते हैं? बताइये।
2) मध्यकाल को हम कितने भागों में विभक्त कर सकते हैं?
3) भारत में मुसलमानों का आगमन पर चर्चा कीजिए।
4) संगीत मकरन्द के अनुसार रागों को कितने वर्गों में विभाजित किया जा सकता है? समझाइये।
5) अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल पर प्रकाश डालिए।
6) अमीर खुसरो ने किन वाद्यों का आविष्कार किया? बताइये।
7) टप्पा गायन शैली पर टिप्पणी लिखिए।

ग) रिक्त स्थानों की पूर्ति :–

1. गीत गोविन्द की रचना पं0 जयदेव द्वारा .... शताब्दी में हुई।
2. राग तरंगिणी के अनुसार सम्पूर्ण रागों को कुल .... थाटों में बॉटा गया है।
3. राजा मानसिंह तोमर का राज्य काल सन् .... से .... था।
4. तानसेन .... गायकी के प्रसिद्ध गायक थे।
5. दरबारी कान्हड़ा .... द्वारा रचित राग है।
6. रामदासी मल्हार का आविष्कार .... ने किया।
7. चॉद खॉ का उपनाम .... था।
8. सन् .... में पं0 दामोदर मिश्र ने .... ग्रंथ लिखा।
9. ग्रंथ .... में प्रथम बार वीणा के तार पर .... स्वरों की स्थापना की गई है।
10. हृदय नारायण देव ने .... और .... ग्रंथ लिखे।
11. शोरी मियॉ ने .... का आविष्कार किया।

(घ) बहुविकल्पीय प्रश्न :–

(1) मुसलमान बनने से पूर्व तानसेन का नाम था –

(i) तानसेन चर्तुवेदी (ii) तन्ना द्विवेदी
(iii) तन्ना मिश्र (iv) तानसेन चौबे

(2) गणेश स्त्रोत किसके द्वारा रचित ग्रंथ है –

(i) रामदास (ii) तान तरंग
(iii) गोपाल (iv) तानसेन

(3) ख्याल का आविष्कार किया –

(i) विचित्र खॉ (ii) सुल्तान हुसेन शर्की
(iii) मोहम्मद शाह रंगीले (iv) पं0 अहोबल

(4) पुंडरीक विट्ठल की रचना का नाम है –

(i) नर्तन निर्णय (ii) मेद्य
(iii) राग तरंगिणी (iv) संगीत रत्नाकर

(5) वृन्द वादन का एक अन्य नाम –

(i) शौकत (ii) औकत
(iii) पंचवत (iv) नौबत

(6) शौकी को आनन्द खॉ की उपाधि किसने प्रदान की –

(i) शाहजहॉ (ii) जहॉगीर
(iii) अकबर (iv) अलाउद्दीन खिलजी

(7) 'राग विबोध' के रचनाकार –

(i) पं0 सोमनाथ (ii) पं0 दामोदर

(iii) पं0 गंगाधर (iv) पुँडरीक बिट्ठल

(8) गुण समुद्र कहते हैं–

(i) विलास खॉ (ii) ताल खॉ

(iii) दिरग खॉ (iv) छत्र खॉ

(9) पं0 अहोबल द्वारा रचित पुस्तक –

(i) संगीत मकरन्द (ii) संगीत रत्नाकर

(iii) चर्तुदन्डिप्रकाशिका (iv) संगीत पारिजात

(10) अदारंग किसके दरबार में संगीतज्ञ थे –

(i) मो0 खिलजी (ii) मो0 शाह रंगीले

(iii) सुल्तान हुसेन शर्की (iv) औरंगजेब

(11) प्रबंध काल कहलाता है –

(i) वैदिक काल (ii) आधुनिक काल

(iii) प्रागैतिहासिक काल (iv) मध्यकाल

1.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप भारतीय संगीत के मध्यकाल से परिचित हो चुके होंगे। भारतीय संगीत का इतिहास भी उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव मनोभावों का है। सभ्यता के प्रत्येक चरण में संगीत की सुमधुर स्वर–लहरी किसी न किसी रूप में विद्यमान होती रही है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न तथ्यों को जान चुके होंगे :–

- सामंतशाही ऐश्वर्य के प्रवेश के कारण संगीत अपनी मौलिक मर्यादा से हटकर श्रृंगार–प्रधान हो गया।
- मुस्लिम आक्रमणों के परिणामस्वरूप मुगल–सभ्यता के प्रभाव से भारतीय संगीत अपनी प्राचीनता को विस्मृत करते हुए एक नवीन रूप में विकसित होने लगा। परिणामतः भारतीय संगीत उत्तरी एवं दक्षिणी दो पद्धतियों में विभक्त हो गया।
- दक्षिण भारतीय संगीत अपने प्राचीन मौलिक रूप को अक्षुण रखते हुए उन्नति पथगामी होता रहा, जबकि उत्तर भारतीय संगीत मुस्लिम–संगीत के सम्पर्क में आकर नित–नवरूपों में विकसित होने लगा।
- मध्यकाल के पूर्वार्ध में प्रबन्ध–गायन प्रचलित था, इसी कारण से यह प्रबन्ध–काल भी कहलाता है।
- इस काल में ''संगीत–मकरंद'', ''गीत–गोविन्द'' एवं ''मानसोल्लास'' जैसे महत्वपूर्ण संगीत–ग्रन्थों की रचना हुई। सन् 1290 से 1320 के बीच अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में महान संगीतज्ञ शारंगदेव ने भारतीय संगीत के आधार एवं अमर ग्रन्थ ''संगीत–रत्नाकर'' की रचना की। रामामात्य कृत ''स्वरमेल कलानिधि'', पुण्डरीक विट्ठल ने ''सद्राग–चन्द्रोदय'',''रागमाला'',''रागमंजरी'' एवं ''नर्तन निर्णय'', सोमनाथ कृत ''राग–विबोध'', पं0 दामोदर कृत ''संगीत–दर्पण'', पण्डित अहोबल ने ''संगीत–पारिजात'' भी इसी काल में लिखी गई।
- जौनपुरी बादशाह सुल्तान हुसैन शर्की ने ख्याल–गायन का प्रचार किया।

- मुगल शहंशाह अकबर के शासनकाल में भारतीय संगीत अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा। अकबर के दरबार में तानसेन, नायक बैजू, तालरंग एवं गोपाल आदि प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। इस काल में ध्रुपद–गायन का अत्यधिक प्रचार था। इसी समय सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ बैजू बाबरा ने होरी गायन शैली का तथा धमार ताल का आविष्कार किया।
- मुगलकाल के बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले के समय में भी संगीत पुनः उन्नति की ओर अभिमुख हुआ। इसी समय पंजाब में गुलाम रसूल उर्फ शोरी मियां ने टप्पा जैसी लोचपूर्ण गायन–शैली का अविष्कार किया। त्रिवट, गज़ल एवं तराना जैसी गायन–शैलियॉ भी इसी काल में प्रचार में आयी।

इन्हीं कारणों से भारतीय संगीत के इतिहास मे मध्य–युग को 'स्वर्ण–युग' के नाम से अभिहित किया जाता है।

1.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ग) रिक्त स्थानों की पूर्ति :–

1. 12वीं 2. 12 3. 1486 से 1516 4. ध्रुवपद
5. तानसेन 6. रामदास 7. शशि 8. 1625, संगीत दर्पण
9. स्वरमेलकलानिधि, 14 10. हृदयकौतुक, हृदयप्रकाश 11. टप्पा

(घ) बहुविकल्पीय प्रश्न :–

1.(iii)तन्ना मिश्र 2. (iv)तानसेन 3. (ii) सुल्तान हुसेन शर्की
4. (iii)राग तरंगिणी 5. (iv)नौवत 6. (ii)जहांगीर
7. (i)पं0 सोमनाथ 8. (iii)दिरग खां 9. (iv)संगीत पारिजात
10. (ii) मो0 शाह रंगीले 11.(iv)मध्यकाल

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जोशी, श्री उमेश, भारतीय संगीत का इतिहास, मानसरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, फिरोजाबाद, द्वितीय संस्करण 1969।
2. परांजपे, शरच्चंद्र श्रीधर, भारतीय संगीत का इतिहास, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 1969(वैदिक काल से गुप्त काल तक)।
3. बृहस्पति आचार्य, मुसलमान और भारतीय संगीत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण, 1974।
4. जायसवाल, श्री राधेश्याम, भारतीय सुषिर वाद्यों का इतिहास, वाराणसेय संस्कृत संस्थान, वाराणसी प्रथम संस्करण 1983।
5. शुक्ल, श्री हीरालाल, आदिवासी संगीत, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ गन्थ अकादमी, भोपाल, प्रथम संस्करण, 1986।
6. वर्मा, सुश्री रीता, प्राचीन भारत का इतिहास, बोहरा प्रकाशन जयपुर, प्रथम संस्करण, 1981।
7. शर्मा, डॉ0 स्वतंत्रा, भारतीय संगीत का ऐतिहासिक विश्लेषण, टी0एन0, भार्गव एण्ड संस, कटरा, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण– 1988।

8. श्रीवास्तव, सुश्री धर्मावती, प्राचीन भारत में संगीत (वैदिक काल से गुप्तकाल तक), संशोधित संस्करण, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1967।
9. रानी, डॉ0 संध्या, उ0प्र0 के रूहेलखण्ड क्षेत्र की संगीत परम्परा, रामपुर रज़ा लाइब्रेरी, रामपुर (उ0प्र0)।
10. Bandopadhya Shripad, The Music of India, Tresure House of Books, Bombay, IIIrd edition, 1970.
11. Eathel Rosenthal, The Story of Indian Music and its Instruments, Oriental Books, New Delhi.
12. Pingle B.A., History of Indian Music, Indological Book House, Delhi, 1985.
13. Deva B.C, Indian Music, Indian Council for Cultural Relations, New Delhi, 1974.

1.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शर्मा, श्री भगवतशरण, भारतीय संगीत का इतिहास, संगीत मंदिर, खुर्जा, प्रथम संस्करण 1981।
2. श्रीवास्तव, श्री हरीश्चन्द्र, राग परिचय भाग–3, संगीत सदन प्रकाशन, साउथ मलाका, इलाहाबाद।
3. परांजपे, शरच्चंद्र श्रीधर, संगीत बोध, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, द्वितीय संस्करण, 1980।

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मध्यकाल में लिखित किन्हीं तीन ग्रन्थों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत कीजिए।

इकाई 2 – प्राचीन, मध्य व आधुनिक काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्ध वाद्य।

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 प्राचीन काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्ध वाद्य

2.4 मध्य काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्ध वाद्य

2.5 आधुनिक काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्ध वाद्य

2.6 सारांश

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम बी0ए0एम0टी0(एन0)–301 की दूसरी इकाई है। इससे पहले की इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप विशेष रूप से मध्यकाल के समय में भारतीय संगीत की स्थिति के विषय में बता सकेंगे।

इस इकाई में प्राचीन, मध्य व आधुनिक काल में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख भारतीय अवनद्य वाद्यों की चर्चा की गई है। साथ ही इन अवनद्य वाद्यों के ंआविष्कार से जुडे विभिन्न मतों का उल्लेख भी किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे कि प्राचीन, मध्य व आधुनिक काल में कौन–कौन से अवनद्य वाद्य प्रयोग किए जाते थे। आप इन अवनद्य वाद्यों के ंआविष्कार से जुडे विभिन्न मतों को भी जान सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :–

1. प्राचीन काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्यों के विषय में जान सकेंगे।
2. मध्य काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्यों के विषय में जान सकेंगे।
3. आधुनिक काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्यों के विषय में जान सकेंगे।

2.3 प्राचीन काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्य

<u>प्राचीन काल में संगीत</u> – यह काल मध्यकाल से पूर्व का काल है जिसका समय 800 ई0 से पहले का है। इस काल में वैदिक काल, रामायण काल, महाभारत काल व पौराणिक काल का समावेश किया जा सकता है। वैदिक काल में हमें चार वेद ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद व अथर्ववेद तथा रामायण, महाभारत जैसे प्रबन्ध काव्य एवं पुराण प्राप्त होते हैं। इनसे हमें इस काल के संगीत प्रसंगों के माध्यम से संगीत का ज्ञान प्राप्त होता है।

भारत में आर्यों के आगमन से वैदिक युग का प्रारम्भ माना जाता है। इस युग में चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र स्थापित हुए। संगीत ब्राह्मण वर्ग के हाथ में था। स्त्रियां भी इस युग में गायन, वादन तथा नृत्य तीनों में भाग लिया करती थी। यज्ञ हेतु गायक एवं वादक नियुक्त रहते थे। इस युग में संगीत धर्म के साथ जुड़ गया तथा पवित्र माना जाने लगा। आर्यों के जीवन में संगीत ने पूरी तरह से प्रवेश किया। इस समय आर्यों ने देवताओं को प्रसन्न करने का एक मात्र साधन संगीत को ही माना तथा संगीत का आध्यात्मिक स्वरूप भी स्थापित हुआ। इस युग में संगीत एवं संगीत कलाकारों को बहुत सम्मान प्राप्त था, जिसका कारण वैदिक युग के कलाकारों का उज्जवल एवं उच्चकोटि का चरित्र था। संगीत की तपस्या बड़े संयम एवं नियम से की जाती थी। स्त्रियां वीणा वादन में प्रवीण थी एवं संगीत के आयोजन में खुलकर भाग लेती थी तथा समाज में इनको सम्मान प्राप्त था। मध्यकाल के उत्तरार्ध में संगीत जब धर्म एवं आध्यात्म से अलग होकर विलासित के रूप में प्रयोग होने लगा तो इसमें नैतिक पतन आया एवं इसको हेय दृष्टी से देखा जाने लगा। ऋग्वेद की गानोपयोगी ऋचाओं को संकलित करके ही सामवेद की रचना हुई। ऋक का स्वरयुक्त गान होता था जो कि स्वर एवं शब्द के मेल का प्राचीनतम स्वरूप है। सामवेद से ही संगीत का प्रथम ज्ञान प्राप्त होता है तथा यह संगीत का प्रारम्भिक ग्रन्थ है।

वैदिक युग में सामगान के चार प्रकार – ग्राम गेय, अरण्ये गेय, उहं एवं उह थे। ग्राम गेय गायन गृहस्थी, गोष्ठियों तथा सामान्य जन के लिए था। अरण्ये गान अरण्यवासी ऋषियों के लिए था। साम गान के दो भाग पूर्वगान एव उत्तर गान थे। ग्राम गेय गान को पूर्व गान तथा अरण्ये, उहं एवं उह गान को उत्तर गान कहते थे। ग्रामगेय गान से मार्गी संगीत की कल्पना प्रतिपादित हुई। साम गान में तीन स्तोभ – वर्ण स्तोभ, पद स्तोभ तथा वाक्य स्तोभ थे। इन स्तोभों से भरत ने बहिर्गीतों को स्थापित किया था। साम गान में वर्तमान की भांति सम, विषम, विभिन्न प्रकार के छंद एव लय के विभिन्न प्रयोग होते थे। किसी भी यज्ञ हेतु सामगान अनिवार्य था। सामगान हेतु स्वर सप्तक का प्रयोग होता था जिन्हें क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, कृष्ट एवं अतिस्वर कहते थे तथा इनका क्रम अवरोह का था। वैदिक युग में ही नई–नई शैलियों के गीतों का उदभव एवं विकास हुआ। सामवेद के द्वारा स्वर सप्तक, लय के प्रयोग, छन्द के प्रयोग का प्रथम बार ज्ञान प्राप्त होता है। वेदों में विभिन्न प्रकार के लय वाद्यों का प्रसंग भी प्राप्त होता है। वैदिक युग में वैदिक संगीत के अतिरिक्त लौकिक संगीत के रूप में गाथा गायन का भी प्रचार था। सभी वेदों में संगीत के प्रसंग प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद मे काष्ठ दुदुंभि लय वाद्य का विवरण उपलब्ध होता है। सामगान में लय एवं छन्द प्रदर्शन हेतु भूमि दुदुंभि का प्रयोग किया जाता था। यजुर्वेद कालीन महिलाएं लय शास्त्र में प्रवीण थी तथा गायन एवं नृत्य में लयकारी का प्रदर्शन करती थी। गायन, वादन एवं नृत्य के साथ मात्रा गिनकर हाथ से ताल देने की प्रथा थी जो कि दक्षिण भारतीय संगीत में वर्तमान में भी प्रचलित है।

रामायण एवं महाभारत काल प्राचीन काल में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनका समय ईसा पूर्व 400 में 200 वर्ष तक का है। रामायण एवं महाभारत संगीत ग्रन्थों के अन्तर्गत नहीं आते हैं परन्तु इन ग्रन्थों में संगीत के उपलब्ध विभिन्न प्रसंगों से इन कालों में संगीत की स्थिति की जानकारी प्राप्त होती है। रामायण एवं महाभारत के प्रत्येक अध्याय में गीत, वाद्य तथा नृत्य का उल्लेख है। रामायण काल में संगीत का विशेष आदर था। राज परिवार, ब्राह्मण तथा ऋषि मुनि भी संगीत की साधना किया करते थे। महर्षि बाल्मीकि ने लव–कुश के द्वारा राम की सभा में रामायण का सस्वर गान कराया था। राम के अश्वमेघ यज्ञ आयोजन में भी रामायण का स्वर एव ताल युक्त गान का उल्लेख रामायण के उत्तरकाण्ड में प्राप्त होता है। इस गान हेतु कुशल गायकों को आमन्त्रित किया गया था। रामायण के रचियता महर्षि बाल्मीकि स्वर संगीत के मर्मज्ञ विद्वान थे तथा इन्होंने लव–कुश के माध्यम से लय के प्रकार द्रुत, मध्य एवं विलम्बित लय का विवेचन किया। लव–कुश के गान को रामचन्द्र तथा यज्ञ में उपस्थित सभी लोगों ने सराहा था तथा यज्ञ के अन्त में स्वयं रामचन्द्र व ऋषि मुनियों आदि ने बाल्मीकि एवं लव–कुश का आदर पूर्वक आहवान किया था। रामायण काल में लय वाद्यों का विशेष स्थान एवं महत्व था। दशरथ की मृत्यु के पश्चात जब भरत अयोध्या लौटे थे तो उनको पिता दशरथ की मृत्यु का पता नहीं था परन्तु अयोध्या में मृदंग तथा अन्य लय वाद्यों को मौन देख उनको अनिष्ट का आभास हो गया था। रामचन्द्र द्वारा शिव का धनुष तोडे जाने के समय आकाश में देवताओं द्वारा दुदुंभी बजाई गई तथा अप्सराएं नृत्य व गीत करने लगी। रामचन्द्र एवं सीता के जयमाला के समय भी संगीत का आयोजन किया गया था। ये सभी प्रसंग रामायण में प्राप्त होते हैं। रावण भी संगीत का प्रकाण्ड विद्वान था। रामायण काल में भी वैदिक काल की भांति हाथ से लय ताल देने की प्रथा रही जो कि रामायण में गान्धर्व गान के प्रसंग में **पाणिवादिका** शब्द से ज्ञात होती है।

महाभारत काल में भी गीत, वाद्य एवं नृत्य के उल्लेख प्राप्त होते हैं। महाभारत काल में कृष्ण, संगीत एवं नृत्य के महान आचार्य थे तथा इनके द्वारा रासलीला नृत्य की उत्पत्ति की गई। वाद्य वंशी एवं कृष्ण एक दूसरे के पूरक बन गए। नृत्य का महाभारत में आदि पर्व, द्रोण पर्व तथा अरण्य पर्व में उल्लेख प्राप्त होता हैं। महाभारत काल में रस भाव एवं लय प्रयोगों के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं तथा इनका विवेचन भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में किया है। इस काल में पुरूषों के समान नारियां तथा अन्तःपुर की स्त्रियां भी संगीत तथा नृत्य में निपुण थी। समाज में संगीत एवं नृत्य के कलाकारों को सम्मान प्राप्त था। महाभारत

काल के धनुर्धर अर्जुन पखावज वादन तथा नृत्य कला में निपुण थे जो कि इनके अज्ञातवास के समय बहन्नलाल का रूप धारण कर संगीत नृत्य की शिक्षा, विराट राजा की पुत्री उत्तरा को देने के प्रसंग से प्रमाणित होती है। महाभारत काल में कृष्ण एवं अर्जुन ने संगीत की स्थापना में विशेष योगदान दिया। अर्जुन नृत्य, पखावज वादन तथा वीणा वादन तीनों में ही निपुण थे।

रामायण तथा महाभारत के पश्चात सभ्यता एवं संस्कृति के विकास हेतु पुराण लिखे गए जिनके रचियता के रूप में महाभारत के रचियता वेदव्यास ही जाने जाते हैं। अठारह पुराणों का प्राचीन समय में उल्लेख प्राप्त होता है। अठारह पुराण के नाम इस प्रकार हैं – बहम, पदम, वैष्णव, शैव, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, अग्निय, भविष्य, बहमवैवर्त, लिंग, बाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मतस्य, गरूण एवं बह्मांड।

मार्कण्डेय पुराण प्राचीन पुराण ग्रन्थ है। यह 237 अध्याय में विभक्त है परन्तु प्रत्येक अध्याय में संगीत नृत्य के प्रसंग प्राप्त नहीं होते हैं। प्रथम अध्याय में नारद ने अप्सराओं को सम्बोधित कर नृत्य एवं नर्तक की व्याख्या प्रस्तुत की। मार्कण्डेय पुराण के तेइसवें अध्याय में संगीत की विवेचना की गई है। इस अध्याय में संगीत की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती के माध्यम से ताल क्रियाओं तथा वाद्य वर्गीकरण का परिचय दिया गया हे। ताल, लय तथा यति आदि का उल्लेख भी इस पुराण में प्राप्त होता है। मार्कण्डेय पुराण के अतिरिक्त वायु पुराण के 86 व 87 वें अध्याय में संगीत की विवेचना की गई है जिसे गान्धर्व शास्त्र कहा गया। सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छना व उन्नचास तानों का उल्लेख भी वायु पुराण में प्राप्त होता है।

पुराणों के पश्चात् हमें तीन उपनिषद छांदोग्योपनिषद, बृहदारण्यकोपनिषद तथा तैतिरीयोपनिषद प्राप्त होते हैं। इन तीनों में छांदोग्योपनिषद सबसे प्राचीन है जिसमें गीत, वाद्य तथा नृत्य का उल्लेख प्राप्त होता है। इसमें ही गीत के साथ सामूहिक नृत्य का तथा ह्रश्व, दीर्घ तथा प्लुत मात्राओं का विवरण मिलता है। गायन में तथा मन्त्रों के पाठ हेतु मात्राओं के प्रयोग के निश्चित नियम थे तथा नियमों के विपरीत मन्त्रों का पाठ अथवा गायन निषिद्ध था। बृहदारण्यक में गायत्री मंत्र हेतु त्रिष्टुप एवं अनुष्टुप छन्द का प्रयोग निश्चित किया गया है। तैतिरीय उपनिषद में संगीत में प्रयुक्त होने वाले वर्ण, स्वर, मात्रा तथा बल शब्द के उच्चारण की विवेचना प्रस्तुत की गई। स्वर के प्रकार – अनुदात्त, स्वरित एवं उदात, मात्रा – लघु, दीर्घ एवं प्लुत की विवेचना तैत्तिरीय उपनिषद में प्राप्त होती है।

उपनिषदों के पश्चात शिक्षाशास्त्र ग्रन्थों में संगीत की प्रायोगिक शिक्षा के मन्त्र प्राप्त होते हैं। शिक्षाशास्त्र ग्रन्थ को प्रतिशारण्य ग्रन्थ भी कहा गया। इसमें विलम्बित, मध्य तथा द्रुत लय के प्रयोग की शिक्षा के विषय में चर्चा की गई है जिसके अनुसार प्रारम्भ में विलम्बित लय का प्रयोग, पुनरावृत्ति हेतु द्रुत लय तथा प्रदर्शन हेतु मध्यलय के प्रयोग का उल्लेख प्राप्त होता है। कण्ठ के अभ्यास हेतु मन्द्रसप्तक का प्रयोग बताया गया है।

विभिन्न जातक कथाओं के माध्यम से बौद्ध काल में संगीत की स्थिति स्पष्ट होती है। भेरीवादकजातक कथा के अनुसार गौतम बुद्ध का जन्म एक भेरी बजाने वाले के कुल में हुआ था तथा इसमें भेरी का उल्लेख है। शंख जातक में शंख का उल्लेख है। गुप्तिल जातक में गुप्तिल ने अपने शिष्य मुसिल को एक श्रेष्ठ वादक का स्थान दिया था। काकवती जातक में वीणा एवं गाथा गान का प्रसंग है। शोणक जातक में राजा अमिरन्द्र एवं बालक पचंचूड के सन्दर्भ में गायन का प्रसंग है तथा इसी में बताया गया कि भेरी की ध्वनि के द्वारा लोगों को संगीत आयोजन हेतु सूचना दी जाती थी। विदुरपण्डित जातक में हाथ से ताली देकर संगीत प्रदर्शन एवं लय वाद्य कुतस्थुण, पणव, डिडिम्ब, मृदंग, कांस्य एवं करताल का उल्लेख है। इसी में स्त्रियों के सामगान के साथ पिच्छौरा वीणा वादन का भी उल्लेख है।

कुतस्थुण का वर्तमान स्वरूप दक्षिण भारतीय संगीत का घटम वाद्य है परन्तु कुतस्थुण में घड़े के मुख को चर्म द्वारा आच्छादित किया जाता था। विश्वन्तर जातक में वाद्यों का वर्गीकरण प्राप्त होता है जिसमें वाद्यों को पांच श्रेणी– आतत, वितत, आतत वितत, घन तथा सुषिर वर्ग में रखा गया है। आतत

श्रेणी में वर्तमान के अवनद्य वाद्य आते हैं जिनमें मुख पर चमड़ा मढा होता है, जैसे तबला। वितत जिनके दोनों मुख पर चमड़ा मढा होता है जैसे ढोल, डमरू, हुडक्का, मृदंग आदि। आतत वितत श्रेणी में वीणा जैसे वाद्य थे, घन तथा सुषिर का वर्गीकरण वर्तमान की भांति ही था। शवयात्रा तथा अन्त्येष्टि के समय भेरी वादन किया जाता था। गौतम बुद्ध के महानिर्वाण के बाद उनकी अन्त्येष्टि वाद्यों की ध्वनि के साथ सम्पन्न की गई थी।

बौद्ध काल में वाराणसी में एक विश्वविद्यालय था जिसके साथ एक संगीत विद्यालय संलग्न था। इसमें लगभग 500 विद्यार्थी थे जो कि संगीत के गुणी शिक्षकों से संगीत की शिक्षा प्राप्त करते थे। उस समय के तीन विश्वविद्यालय नालन्दा, विक्रमशीला तथा औदन्तपुरी में गान्धर्व विद्या विभाग था जिसमें संगीत की विधिवत शिक्षा दी जाती थी।

मौर्य काल में भी संगीत का विकास हुआ परन्तु इस काल में संगीत मनोरंजन हेतु अधिक प्रयोग होने लगा था। संगीत नागरिक जीवन का अंग बन गया। विवाह हेतु भी वर तथा वधु के लिए संगीत में प्रवीण होना एक आवश्यक गुण माना जाता था। गणिकाओं में संगीत उनकी जीविका निर्वाह का साधन बन गया था। संगीत कला का आदान प्रदान गोष्ठियों के माध्यम से होने लगा। चन्द्रगुप्त मौर्य की पत्नी जो कि युनान के सैल्युकस की पुत्री थी, युनानी संगीत की उत्तम कलाकार थी। इस प्रकार भारत में युनानी संगीत आया। अशोक ने संगीत को उच्च स्तर पर पहुंचाने के लिए अथक परिश्रम किया जिसमें उन्होंने श्रृंगारिक गीतों का बहिष्कार किया। अशोक की पत्नी की परिचारिका चारूमित्रा वीणा वादिका थी। अशोक के समय संगीत ने पुनः अपने आध्यात्मिक स्वरूप को प्राप्त किया जिसको विदेशों में श्रृद्धा से अपनाया गया।

अशोक के बाद कनिष्क स्वयं संगीतज्ञ थे। इन्होंने संगीत को उसके गौरवशाली स्तर पर पहुंचाने में विशेष योगदान दिया। कनिष्क के दरबार में भारत के समस्त प्रान्तों के अतिरिक्त अफगानिस्तान तथा चीन के कलाकार भी समय—समय पर उपस्थित रहा करते थे। जिनका कनिष्क बहुत आदर किया करता था तथा यथोचित पुरस्कृत भी करता था। इस समय भारतीय संगीत का प्रचार पूरे एशिया में हुआ। कनिष्क काल के उपरान्त भरत ने नाट्यशास्त्र की रचना की।

गुप्त काल के सम्राट समुद्रगुप्त स्वयं एक अच्छे संगीतज्ञ थे। उस समय की सोने की मुद्रा पर समुद्रगुप्त का वीणा वादन करते हुए चित्र उक्त तथ्य को सिद्ध करता है। इस काल में भारतीय संस्कृति के साथ विदेशी सभ्यता एवं संस्कृति का मिलन हुआ जिससे संगीत में नवीन दिशाओं का सूत्रपात हुआ। महाराजा विक्रमादित्य(चन्द्रगुप्त द्वितीय) ने शिक्षा, शिल्प, संगीत के लिए नाट्यशास्त्र तथा संगीतशालाओं का निर्माण करवाया था। महाकवि कालिदास के ग्रन्थों से गुप्तकालीन संगीत का परिचय प्राप्त होता है। कालिदास के समय मार्गी संगीत का लगभग लोप हो चुका था तथा देशी संगीत ही समाज में प्रचलित था। कालिदास के 'कुमार सम्भव' एवं 'अभिज्ञानशाकुन्तलम' में संगीत के शाब्दिक शब्दों का प्रयोग है। 'कुमार सम्भव' में मंगल पदों के लिए विलम्बित शब्दों का प्रयोग उल्लेखित है। 'मेघदूत' में कालिदास ने गान्धार ग्राम की मूर्च्छनाओं का वर्णन किया है। 'मृच्छकटिक' नाटक में मृदंग हेतु पणव शब्द का प्रयोग किया गया है। भरत के पुत्र दत्तिल द्वारा लिखा गया ग्रन्थ दत्तिलम इस काल की महत्वपूर्ण देन है।

प्राचीन काल में हमें चार वेद, पुराण, महाभारत, रामायण आदि से इस काल के संगीत की स्थिति का ज्ञान होता है। इसके अतिरिक्त संगीत की विवेचना भरत के नाट्यशास्त्र, नारदकृत नारदीय शिक्षा, नारद कृत संगीत मकरंद, शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर, रामामात्य कृत स्वरमेलकलानिधि, दामोदर कृत संगीत दर्पण, सोमनाथ कृत रागविबोध, अहोबल कृत संगीत पारिजात आदि ग्रन्थों से प्राप्त होती है जो कि संगीत के विकास हेतु बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुए।

<u>प्राचीन काल के अवनद्य वाद्य :–</u>

<u>डमरू</u> – डमरू भारत का सर्वप्रथम अवनद्य वाद्य है। डमरू शंकर भगवान के दाए हाथ में रहता है जो कि अखण्ड महाकाल को नियंत्रित एवं संयमित करने का घोतक है।

<u>दुदुम्भी</u> – वैदिक काल में दुदुम्भी का अवनद्य वाद्य के रूप में विशेष स्थान था। दो प्रकार की दुदुम्भी प्रचलन में थी 1. भूमि दुदुम्भी जो कि पृथ्वी में गढा़ खोद कर उसके मुख पर चमडा़ आच्छदित किया जाता था तथा चमडे को चमड़े की डोरी से कसा जाता था। 2. काष्ठ–दुदुम्भी में लकडी़ के खोल के उपर चमडा़ मढ दिया जाता था। मन्त्रों द्वारा दुदुम्भी का आवाह्न किया जाता था।

मन्त्रों में शत्रु के नाश हेतु दुदुम्भी का प्रयोग होता था। काष्ठ दुदुम्भी को वनस्पति वाद्य भी कहा गया है। नगाडा़, नक्कारा, धौंसा तथा दमामा, दुदुम्भी वाद्य के ही रूप हैं। इनके विभिन्न आकारों के कारण इनके नाम भिन्न हो गए। वर्तमान का नगाडा़ दुदुम्भी ही है। हिन्दी शब्द सागर में भी दुदुम्भी का अर्थ नागाडा़ तथा धौंसा दिया गया है। दुदुम्भी मंगल उत्सवों में तथा देव मन्दिरों में बजाई जाती थी। दुदुम्भी एक नग का वाद्य था। नगाडा़ में बडे आकार के साथ एक छोटा आकार भी जुड़ गया जिसमें छोटे की ध्वनि उंचे स्वर की तथा बड़े आकार की ध्वनि गम्भीर एवं नीचे स्वर की होती है। इसका प्रयोग शहनाई वाद्य की संगति एवं हरियाणा तथा राजस्थान के लोक संगीत में होता है। इसका वादन हाथ एवं लकडी दोनों से ही आवश्यकतानुसार किया जाता है।

<u>मृदंग</u> – यह एक अत्यन्त प्राचीन अवनद्य वाद्य है जिसके आविष्कारक भगवान शंकर को बताया गया है तथा भगवान गणेश ने सर्वप्रथम इसका वादन किया था। त्रिपुरासर के वध के पश्चात् उसके रक्त से जो कीचड़ बना उससे बह्मा ने मृदंग का निर्माण किया। वैदिक काल का मृदंग मिट्टी का बना होता था परन्तु महाभारत काल में यह लकड़ी का बनने लगा। लकड़ी से बने मृदंग की ध्वनि मिट्टी से बने मृंदग की ध्वनि से अधिक मधुर होती थी। कई ग्रन्थकारों ने लकडी़ के बने मृदंग को मधुर मृदंग भी कहा है। रक्तचन्दन लकडी़ से बना मृदंग को सबसे अच्छा माना जाता था। मृदंग दो मुखी वाद्य है जिसका दाहिना मुख आठ से दस अंगुली के व्यास का तथा बायां मुख इससे थोडा़ बडा़ होता था। इसकी लम्बाई लगभग डेढ हाथ के बराबर होती थी। दोनों मुख पर बकरे का चमडा़ लगाया जाता था। प्राचीन ग्रन्थों में मृदंग, मुरज तथा मर्दल शब्दों का प्रयोग मिलता है। भरत ने नाट्यशास्त्र में कहा है कि मांगलिक होने के कारण इसको मृदंग तथा मिट्टी से बने होने के कारण इसे मुरज कहा गया। मृदंग एवं मुरज एक दूसरे के पर्याय है शारंगदेव का मत भी यही था। शारंगदेव ने मृदल को भी मृदंग का प्रर्याय माना है।

<u>पुष्कर</u> – भरत ने मृदंग को पुष्करत्रय भी कहा है। भरत के समय में मृदंग के तीन भाग थे आंकिक, उर्ध्वक तथा आलिग्य जिनको त्रयपुष्कर भी कहा जाता था। आलिग्य एवं उध्वर्क को खडा़ कर तथा आंकिक को लेटाकर बजाते थे। पुष्कर वाद्य की रचना के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि स्वाति मुनि जब स्नान कर रहे थे तब उनको कमल पत्र पर पड़ने वाली जल धारा की ध्वनि ने आकर्षित किया तथा इसे सुनकर इन्होंने

पुष्कर वाद्य का निर्माण किया। शारंगदेव के समय तक त्रयपुष्कर वाद्य का प्रचलन कम हो गया था। भरत ने आंकिक को हरीतकी के समान, उर्ध्वक को यवा अथवा जौं के समान तथा आलिग्य को गोपुच्छा की आकृति के समान बताया है। उर्ध्वक तथा आलिग्य का वादन एक मुख से होता था तथा आंकिक का वादन दोनों मुखों से होता था। मार्जन अर्थात स्वर स्थापना का वर्णन करते हुए भरत ने उर्ध्वक तथा आलिग्य का नाम लिया तथा आंकिक हेतु नाम लिया बाम तथा दक्षिण भाग का जो आंकिक के दो मुखों को स्पष्ट करता है नाम लिया। आंकिक लेटा हुआ वाद्य होता है जो अंक (गोद) में रखकर दोनों मुखों से बजाया जाता था। इसी स्वरूप का बाद में मृदंग अथवा पखावज तथा दक्षिण का मृदंगम प्रचलन में आया। भरतकालीन मृदंग के तीन भाग अथवा त्रयपुष्कर थे परन्तु इनमें आंकिक भाग महत्वपूर्ण था। मृदंग के आकार एवं रूप का वर्णन करते हुए भरत ने पहले आंकिक का वर्णन किया है।

पुष्कर पर स्वर स्थापना का निश्चित नियम था जो मध्यग्राम, षडज ग्राम तथा गान्धार ग्राम के गान के लिए था। जिनको क्रमशः मायूरी मार्जना, अर्धमायुरी मार्जना तथा कार्मारवी मर्जना कहते थे। मायुरी मर्जना में बाम मुख को गान्धार, दक्षिण मुख को षड्ज तथा उर्ध्वक को पंचम स्वर में मिलाया जाता था। अर्धमायुरी मार्जना में बाम मुख को षडज, दक्षिण मुख को रिषभ तथा उर्ध्वक को पंचम स्वर में मिलाया जाता था। कार्मारवी मार्जना में बाममुख को रिषभ, दक्षिण मुख को षडज तथा उर्ध्वक को पंचम में मिलाया जाता था। पुष्कर का प्रचलन धीरे–धीरे कम हो गया तथा मध्यकाल आते–आते मृदंग लोकप्रिय हो गया।

<u>भेरी</u> – हिन्दी शब्द सागर में भेरी को ढोल, नगाड़ा तथा ढक्का बताया है। भेरी को मृदंग जाति का माना जा सकता है क्योंकि यह मृदंग की भाँति दो मुख वाला वाद्य है। भेरी को ढोल के अधिक पास माना जा सकता है, परन्तु नगाड़े का इससे कोई साम्य नहीं है। भेरी के दोनों मुख पर चमड़ा मढ़ा होता है तथा इसको दाहिनी ओर लकड़ी से तथा बांयी ओर हाथ से बजाते हैं, जो कि ढोल की वादन विधि भी है। भेरी का उल्लेख सभी प्राचीन ग्रन्थों में विशेषकर रामायण तथा महाभारत में मिलता है। भेरी का सुषिर वाद्य का स्वरूप भी प्राचीन काल से प्राप्त होता है। यह छः–सात फुट लम्बी धातु की बनी होती है जिसको फूंक कर बजाने का प्रचलन मध्यकाल में युद्ध तथा विवाहोत्सव के समय था। युद्ध के लिए दुदुम्भी वाद्य का प्रयोग किया जाता था किन्तु बाद में इसका स्थान अवनद्य वाद्य भेरी ने ले लिया। दुश्मन में भय उत्पन्न करने हेतु इसका प्रयोग किया जाता था। भेरी के साथ शंख का वादन भी किया जाता था। भेरी का वर्तमान रूप ढोल कहा जा सकता है।

<u>पटह</u> – पटह वर्तमान की ढोलक का स्वरूप है। संगीत पारिजात में पटह का अर्थ भी ढोलक ही दिया गया। मध्यकाल की ढोलक को प्राचीन काल में पटह कहा जाता था। पटह, भेरी तथा मृदंग जाति का वाद्य था जिसे लकड़ी एवं हाथ के आघात से आवश्यकतानुसार बजाया जाता था। मृदंग के बाद पटह ही लोकप्रिय वाद्य था। पटह वाद्य का प्रयोग मुख्यतः देशी संगीत के लिए किया जाता था जबकि मृदंग मार्गी संगीत तथा मध्यकालीन शास्त्रीय संगीत के लिए प्रयोग किया जाता था। मध्यकाल तथा वर्तमान काल में ढोलक का प्रयोग लोक संगीत में ही हुआ। इसका उल्लेख रामायण, महाभारत, नान्यदेव के भरत भाष्य, संगीत रत्नाकर आदि ग्रन्थों में मिलता है।

<u>पणव</u> – उत्तराखण्ड के लोक संगीत में प्रयोग होने वाला हुडका प्राचीन काल का पणव है। ये दो मुखी वाद्य है जिसके दोनों मुख कोमल चमड़े से मढ़े होते हैं जिनको सुतलियों के माध्यम से कसा जाता है। यह डमरू आकार का होता है, बीच में सुतली को ढीला रखा जाता है जिससे बीच में बांए हाथ से दबाकर नीची तथा उंची ध्वनि प्राप्त की जाती है। दाहिने मुख पर हाथ से प्रहार कर शब्द अथवा बोल निकाले जाते

हैं तथा इसको कंधे पर लटका कर बजाया जाता है। प्राचीन काल के पणव को मध्यकाल में आवज, स्कन्धावज तथा हुडुक व वर्तमान में हुडका वाद्य के नाम से जाना जाता है।

<u>दर्दर अथवा दर्दुर</u> – यह मिट्टी का घड़ा है जिसका मुख लगभग सात से नौ अंगुल व्यास का होता है तथा विशेष बात यह कि इस पर मढ़ी खाल का व्यास मुंह से दो–तीन अंगुल अधिक होता है जिसको नीचे डोरी से बांध देते हैं। यह दोनों हाथों के आघात से बजाया जाता है तथा इस पर मृदंग पर प्रयोग होने वाले बोल ही बजाए जाते हैं। इस वाद्य को मृदंग वाद्य के साथ बजाने की प्रथा थी। भरत ने दर्दर वाद्य की चर्चा नाट्यशास्त्र में की तथा इसी दर्दर वाद्य को शारंगदेव ने घट कहा। मध्यकालीन घट में चमड़ा मुख के व्यास के बराबर ही रखा जाने लगा। बिना मुख पर चमड़े वाला घट भी प्रयोग में आया जो कि वर्तमान में दक्षिण भारतीय संगीत में घटम के नाम से प्रयोग किया जाता है।

<u>चक्रवाद्य अथवा करचक्र</u> – यह गोलाकर आकार का लकडी का बना होता है। इसके एक मुख पर चमड़ा मढ़ा होता है जिसका व्यास लगभग दस अंगुलि का होता है। इसको कंधे के सहारे पर रखकर, बाएं हाथ से चमड़ा दबाया जाता है तथा दाहिने हाथ से चमड़े पर आघात किया जाता है। संगीतसार में चक्रवाद्य को खंजरी कहा गया है। मध्यकाल की खंजरी में तीन अथवा चार छोटी लकड़ी के घेरे को काटकर थोड़ी थोड़ी दूरी पर लगाई जाती है जिससे वादन के समय में ये झांझे झंकृत होकर मधुर ध्वनि उत्पन्न करती हैं। बिना झांझ वाली चक्रवाद्य का आकार बड़ा होने पर इसको ढफ कहा जाता है। अतः ढफ तथा खंजरी चक्र वाद्य के ही प्रकार हैं।

अभ्यास प्रश्न

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. सामवेद में प्रयोग होने वाले सप्तस्वर के नाम लिखिए।
2. सामगान हेतु प्रारम्भ में कौन से अवनद्य वाद्य का प्रयोग होता था?
3. महाभारत के अर्जुन कौन से वाद्य बजाते थे?
4. महाभारत के रचियता कौन थे?
5. पुराणों की संख्या कितनी है?
6. सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छना तथा उन्नचास तान का उल्लेख किस पुराण में किया गया है?
7. सामगान में स्त्रियों द्वारा कौन सी वीणा बजाई जाती थी?
8. ढोलक के समान प्राचीन काल में कौन सा वाद्य था?
9. भेरी के समान वर्तमान में कौन सा वाद्य है?
10. प्राचीन काल का पणव वर्तमान में कौन सा वाद्य है?

2.4 मध्य काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्य

<u>मध्यकाल में संगीत</u> – 800 ई से 1800 ई तक का काल मध्यकाल के रूप में जाना जाता है। संगीत की दृष्टी से यह सबसे महत्वपूर्ण काल रहा क्योंकि इस काल में संगीत में कई उतार–चढ़ाव हुए। इस काल में आंशिक रूप से राजपूत काल तथा मुख्य रूप से मुगल काल समाहित है। राजपूत काल में भारत छोटे–छोटे भागों में विभक्त हो गया था तथा छोटे–छोटे राज्य बन गए थे। छोटे–छोटे राज्य आपस में ही

युद्ध में व्यस्त रहते थे। प्राचीन काल की संगीत परम्परा इस काल में नहीं रही। संगीत राजदरबारों एवं विलासिता का अंग बन गया तथा शासक की इच्छा के अनुरूप की संगीत प्रयोग होने लगा तथा संगीत ने इसी वातावरण में सम्भ्वतः विकास किया। यद्यपि इस युग के उपलब्ध राग–रागिनी के चित्र यह दर्शाते हैं कि राजपूत वर्ग संगीत का प्रेमी था। महाकवि जयदेव ने गीत गोविन्द की रचना इसी काल में की तथा नारदीय शिक्षा ग्रन्थ का काल भी यही माना जाता है। इसी युग में मोहम्मद गजनी तथा शहाबुद्धीन गौरी ईरानी बादशाहों ने भारत पर आक्रमण किए। ईरान के बादशाह बहेरामन ने भारत के लगभग 1200 संगीतज्ञों को अपने यहां नौकरी पर रख लिया था। इस प्रकार धीरे–धीरे मुसलमानों का भारत मे प्रवेश हुआ।

भारत पर मुसलमान राजाओं की विजय से भारतीय संगीत पर प्रभाव पड़ा। इस काल में हिन्दु कलाओं के पतन का आरम्भ हुआ। भारत की पवित्र संगीत कला मुस्लिम धारा में विलय हो गई तथा इसका वैदिक–सौन्दर्य नष्ट हो गया।

1290 से 1320 ई को खिजली युग से जाना जाता है। अलाउद्दीन खिलजी संगीत का प्रेमी था एवं इनके दरबार में कवि एवं संगीतज्ञ अमीर खुसरो थे। भारतीय संगीत के सन्दर्भ में अमीर खुसरो विशेष चर्चा में रहे। अमीर खुसरो को कई राग एवं तालों का आविष्कारक बताया जाता है। सितार एवं तबला वाद्य के अविष्कारक के रूप में भी अमीर खुसरो का नाम लिया जाता है जो कि ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर सिद्ध नहीं हो सका है। खिलजी युग में शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर ग्रन्थ की रचना कर संगीत शास्त्र की प्रस्तुति की तथा भरत के कार्य को मध्यकाल में आगे बढाया। शारंगदेव के समय प्रबन्ध गायन प्रचलित था।

खिलजी युग के पश्चात तुगलक युग में संगीत का प्रचलन समाज में हुआ परन्तु गम्भीर शास्त्रीय संगीत के बजाय गजल, कव्वाली, ठुमरी तथा दादरा अधिक प्रचलित हुए।

बाबर के शासन काल से मुगल काल का आरम्भ हुआ। बाबर स्वयं संगीत प्रेमी था एवं संगीतज्ञों का सम्मान करता था परन्तु संगीत को वह केवल मनोरंजन का साधन ही समझता था। प्राचीन काल में संगीत को जो नैतिक एवं आध्यात्मिक स्तर प्राप्त था वह मध्यकाल में धुमिल हो गया। बाबर के पश्चात जब हुमायूं गद्दी पर बैठा तो उस समय सूफी लोग समाज में मानव उत्थान की बातों को संगीत के माध्यम प्रचारित करते थे। हिन्दू सन्तों ने भी यही कार्य किया जिससे संगीत की स्थिती स्थिर होने लगी। इसी काल में जौनपुर के बादशाह सुल्तान हुसैन शर्की में 1500 ई के लगभग ख्याल पद्धति को प्रचलित किया तथा नवीन रागों की रचना की।

अकबर का काल संगीत के लिए विशेष महत्व रखता है क्योंकि इसी काल में संगीत का पुनः उद्धार हुआ। इस काल में ही स्वामी हरिदास, तानसेन, बैज, रामदास, ब्रजचन्द, श्रीचन्द आदि संगीतज्ञ तथा सन्त कबीर, नानक, सूरदास, तुलसीदास, चैतन्य आदि ने संगीत के प्रचार–प्रसार में अमूल्य योगदान दिया। अकबर के दरबार में डागर गांव के निवासी ब्रजचन्द्र, खंडहार के निवासी राज समोखन सिंह, नौहार के श्रीचन्द राजपूत तथा तानसेन थे। इन महान संगीतज्ञों ने क्रमशः ध्रुपद की डागर वाणी, खंडहार वाणी, नौहार वाणी तथा तानसेन ने गोबरहार वाणी प्रचलित की। ध्रुपद की यह वाणी की यह परम्परा वर्तमान तक स्थापित है। तानसेन गौड ब्राहमण थे अतः उनकी शैली का नाम गोडीय अथवा गोबरहारी पडा। तानसेन की कन्या का विवाह समोखन सिंह के साथ हुआ था। अकबर के समय स्वामी हरिदास प्रसिद्ध संगीतज्ञ तथा सन्त हुए, तानसेन इन्हीं के शिष्य थे। तानसेन ने दरबारी कान्हड़ा, मियां की सारंग, मियां की मल्हार, साजागिरी आदि रागों का भी निर्माण किया। इस समय ध्रुपद गायन ही अधिक प्रचलित था। कबीर, सूर, नानक, तुलसी, मीरा ने अपने पदों को संगीतबद्ध कर समाज में फैली कुरीतियों को भजन शैली के माध्यम से जन चेतना जागृत की। संगीत के उत्थान में इन संत संगीतज्ञों का विशेष योगदान है। आज भी इन भक्त कवियों के पद बड़े आदर के साथ गाए जाते हैं। ये सभी सन्त संगीत के मर्मज्ञ थे।

अकबर का पुत्र जहांगीर तथा जहांगीर का पुत्र शाहजहां संगीत के प्रेमी थे। इन्होंने संगीत एवं संगीतज्ञों को पूर्ण आश्रय प्रदान किया जिससे संगीत के मौलिक सिद्धान्तों की रक्षा हुई। संगीत दरबारों की शोभा था तथा शासक की प्रशंसा में ही संगीत की रचनाएं हुई। संगीत, गाणिकाओं के जीवन यापन का साधन भी बन चुका था। जहांगीर के दरबार में छतर खां, विलास खां, खुर्रमदाद, परवेशदाद आदि कलाकार थे। पं दामोदर ने संगीत दर्पण की रचना जहांगीर काल में ही की थी।

इस काल में कत्थक नृत्य भी प्रचार में था। औरंगजेब को संगीत कला का दुश्मन समझा जाता है जिसका कारण उसके समक्ष संगीत का वह स्वरूप ही आया जो विलासित पूर्ण था। इस प्रकार के संगीत को उसने चरित्र के उत्थान में बाधा समझा तथा वह संगीत विरोधी हो गया। यद्यपि वह संगीत का आदर करता था। ऐतिहासिक तथ्यों में किरपा पखावजी को औरंगजेब ने 'मृदंग राय' की उपाधि से सम्मानित किया। बेगम एवं शहजादियों के मनोरंजन हेतु महल में गायन तथा नृत्य के कार्यक्रम हुआ करते थे।

मुहम्मदशाह रंगीले मुगल वंश के अन्तिम बादशाह थे जो की संगीत में निपुण थे। इनके दरबार में सदारंग एवं अदारंग संगीतज्ञ तथा वागेयकार थे। सदारंग तथा अदारंग ने सैकड़ो ख्यालों की रचना की जिसमें उनका नाम भी आता है। मुहम्मदशाह रंगीले का नाम भी ख्याल की रचनाओं में आता है जिनका संकलन पं भातखण्डे ने अपनी क्रमिक पुस्तक मालिका में किया है। ठुमरी एवं टप्पे का प्रचलन भी रंगीले के समय में ही हुआ। इस समय तक ध्रुपद गायन, ख्याल शैली, ठुमरी—दादरा, टप्पा, तराना आदि शैलियां प्रचलन में आ गई थी।

<u>मध्यकाल के अवनद्य वाद्य</u> — प्राचीन काल के सभी अवनद्य वाद्य का प्रचलन मध्यकाल में भी रहा परन्तु उनके नामकरण में परिवर्तन आया जिसकी चर्चा वैदिक काल में अवनद्य वाद्य के अर्न्तगत की जा चुकी है। मध्यकाल में ख्याल गायन शैली का प्रचलन प्रारम्भ हुआ जिसकी लय—ताल की संगति हेतु मृदंग वाद्य को उपयुक्त नहीं समझा गया। इसके लिए तबला वाद्य का निर्माण हुआ जिसकी ध्वनि ख्याल गायन शैली के लिए उपयुक्त थी। अतः मध्यकाल में अवनद्य वाद्य में तबले के द्वारा श्री वृद्धी हुई। तबला वाद्य सबसे अधिक लोकप्रिय वाद्य बन गया तथा इसका प्रयोग शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत यहां तक कि लोक संगीत में भी होने लगा। निम्न सूची से आप प्राचीन काल के अवनद्य वाद्य तथा उनके मध्यकाल में नाम से परिचित हो गए होंगे।

प्राचीन काल	मध्यकाल
भेरी	ढोल
दर्दर/दर्दुर	घट, घटम (दक्षिण भारतीय संगीत)
चक्रवाद्य	खंजरी(झांझ वाली), ढ़पली(बिना झांझ वाली), ढ़प अथवा चंग(बडे आकार की ढ़पली)
काष्ठ दुदुम्भी	नगाडा
पणव	हुडुक अथवा हुड़का
पटह	ढ़ोलक
मृदंग	मृदंगम(दक्षिण भारतीय संगीत), मृदंग अथवा पखावज(उत्तर भारतीय संगीत)

अभ्यास प्रश्न

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :—

1. महाकवि जयदेव ने गीत गोविन्द की रचना किस काल में की?
2. शारंगदेव के समय कौन सा गायन प्रचलित था?

3. सदारंग एवं अदारंग किस राजा के दरबार में संगीतज्ञ थे?
4. प्राचीन काल का दर्दर/दर्दुर वाद्य मध्यकाल में किस नाम से जाना जाता था?

2.5 आधुनिक काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्य

आधुनिक काल में संगीत — आधुनिक काल 1800 ई0 से वर्तमान तक का माना जाता है। 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में अंग्रेजों का शासन काल था। अंग्रेजी सभ्यता के परिणामस्वरूप संगीत का विकसित रूप कुंठित होता चला गया। संगीतज्ञों को अपने प्रति अंग्रेजों के उपेक्षित एवं उदासीन व्यवहार के कारण अपनी आजीविकोपार्जन हेतु संगीत कला को व्यवसायिक रूप प्रदान करना पड़ा। जिसका परिणाम यह हुआ कि वैदिक काल की उत्कृष्ठ संगीत कला समाज के निम्न वर्ग में पहुॅच गयी। जहॉ उसका एकमात्र उद्देश्य क्षणिक सुख रह गया। समाज ऐसे व्यक्तियों से घृणा करता था जिसका परिणाम यह हुआ कि वह संगीत से भी घृणा करने लगा। संगीत आमोद—प्रमोद का साधन बन गया, यहॉ तक कि सभ्य समाज में संगीत का नाम लेना अच्छा नहीं माना जाता था। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में एक बार फिर वाजिद अली शाह के दरबार में संगीत का सम्मान हुआ। लखनऊ के गुलाम रज़ा साहब ने *रज़ाखानी* तथा मसीत खां में *मसीतखानी* गत का आविष्कार करके सितार पर उसके वादन का प्रचार किया।

श्रोताओं की समयाभाव व उनकी रूचि को समझते हुए शास्त्रीय संगीत के कलाकारों ने भी परम्परागत शैली से थोड़ा हटकर अपने संगीत में कुछ परिवर्तन किए हैं। आधुनिक काल में हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत ध्रुवपद गायकी का प्रचार कम हो गया है तथा ख्याल शैली अधिक प्रचलित हो गयी है। साथ ही ठुमरी, गजल आदि गायकी भी लोकप्रिय होने लगी। गायन, वादन तथा नृत्य की संगति हेतु तबला एक लोकप्रिय, सक्षम तथा बहुप्रचलित ताल वाद्य के रूप में सामने आया।

संगीत के इस काल में दो महापुरूष (पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे व पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर) इस क्षेत्र में आए, जिन्होंने संगीत के उद्धार में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन दोनों ही महानुभावों ने देश में जगह—जगह घूम कर संगीत का प्रचार—प्रसार किया एवं अनेक संगीत विद्यालय की स्थापना की। आप दोनों ने संगीत से सम्बन्धित कई पुस्तकें भी लिखी। साथ ही संगीत की रचनाओं के संकलन के लिए स्वरलिपि वताललिपि पद्धति का निर्माण किया।

स्वाधीन भारत के उन्मुक्त पर्यावरण में भारत सरकार ने संगीत कला के विकास में महत्वपूर्ण कार्य जैसे अकादमी की स्थापना, आकाशवाणी व दूरदर्शन के विभिन्न केन्द्र स्थापित करना, संगीतज्ञों को सम्मान एवं सुविधाएं प्रदान करना, विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में संगीत को एक विषय के रूप में पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना आदि, जिससे संगीत का प्रचार—प्रसार तीव्र गति से होने लगा।

आधुनिक काल के अवनद्य वाद्य — आधुनिक काल में प्रयुक्त होने वाले कई अवनद्य वाद्य हैं जिनका प्रचलन प्राचीन काल व मध्यकाल में भी रहा परन्तु उनके नामकरण में परिवर्तन आया। इन वाद्यों का प्रयोग शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत यहां तक कि लोक संगीत में भी होता है। साथ ही इनकी चर्चा वैदिक काल में अवनद्य वाद्य के अन्तर्गत की जा चुकी है।

मध्यकाल में ख्याल गायन शैली का प्रचलन प्रारम्भ हुआ जिसकी लय—ताल की संगति हेतु मृदंग वाद्य को उपयुक्त नहीं समझा गया। इसके लिए तबला वाद्य का निर्माण हुआ जिसकी ध्वनि ख्याल गायन शैली के लिए उपयुक्त थी। अतः मध्यकाल में अवनद्य वाद्य में तबले के द्वारा श्री वृद्धी हुई। तबला वाद्य सबसे अधिक लोकप्रिय वाद्य बन गया तथा इसका प्रयोग शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत

यहां तक कि लोक संगीत में भी होने लगा। निम्न सूची से आप प्राचीन व मध्यकाल में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख अवनद्य वाद्य तथा उनके आधुनिक काल के नाम से परिचित होंगे।

प्राचीन काल	मध्यकाल	आधुनिक काल
भेरी	ढोल	ढोल
दर्दर/दर्दुर	घट, घटम (दक्षिण भारतीय संगीत)	घटम (दक्षिण भारतीय संगीत)
चक्रवाद्य	खंजरी(झांझ वाली), ढ़पली(बिना झांझ वाली), ढ़प अथवा चंग(बडे आकार की ढ़पली)	खंजरी(झांझ वाली), ढ़पली(बिना झांझ वाली), ढ़प अथवा चंग(बडे आकार की ढ़पली)
काष्ठ दुदुम्भी	नगाडा	नगाडा
पणव	हुडुक अथवा हुड़का	हुडुक अथवा हुड़का
पटह	ढ़ोलक	ढ़ोलक
मृदंग	मृदंगम(दक्षिण भारतीय संगीत), मृदंग अथवा पखावज(उत्तर भारतीय संगीत)	मृदंगम(दक्षिण भारतीय संगीत), मृदंग अथवा पखावज(उत्तर भारतीय संगीत)

<u>**तबला**</u> — तबले की उत्पति कब, कैसे और किसने की इस पर अभी तक किसी निश्चित परिणाम पर नहीं पहुँचा जा सका है। इसके लिए संगीत विद्वानों ने प्राप्त तथ्यों के आधार पर अपने—अपने मत दिए हैं। किन्तु यह सर्वमान्य है कि तबला वाद्य का इतिहास लगभग 350—400 वर्ष प्राचीन है। सिद्धार खाँ ढाढ़ी को तबला वाद्य का मूल प्रवर्तक माना जाता है। सिद्धार खाँ ढाढ़ी को दिल्ली घराने का प्रथम पुरूष माना जाता है एवं दिल्ली घराने को ही तबले का सबसे पुराना घराना माना जाता है। तबले के मुख्य छः घराने माने जाते हैं— दिल्ली, अजराडा, लखनऊ, फर्रूखाबाद, बनारस एवं पंजाब। दिल्ली घराने के वंशजों द्वारा अजराड़ा एवं लखनऊ घराने की स्थापना हुई। लखनऊ घराने के कलाकारों द्वारा शिष्य तैयार कर फर्रूखाबाद घराना एवं बनारस घराने की नींव पड़ी। पंजाब घराना स्वतन्त्र रूप से पखावज वादन शैली से विकसित हुआ। इन घरानों के विकास क्रम से तबले की वादन शैली विकसित हुई, जिसने तबले को लोकप्रिय अवनद्य वाद्य बनाने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया।

तबला एक भारतीय अवनद्य वाद्य है जिसके दो भाग दायाँ या तबला और बायाँ या डग्गा कहे जाते हैं। दायाँ भाग लकड़ी का बना होता है, जबकि बायाँ भाग धातु जैसे तांबा, लोहा या पीतल का बना होता है। दोनों भागों पर बकरी की खाल से बनी पूड़ी होती है, जिस पर स्याही लगी होती है। तबला वाद्य की उत्पत्ति, विकास, संरचना आदि संबंधी विस्तृत विवरण प्रथम सेमेस्टर की पुस्तक में आपने पूर्व में अध्ययन किया होगा।

<u>पखावज</u> – पखावज का प्राचीन नाम मृदंग था। यदपि प्राचीन अवनद्य वाद्य मृदंग का आकार, पखावज की अपेक्षा छोटा था परन्तु आकार छोटा बडा होने से वाद्य के नाम परिवर्तन का कोई औचित नहीं है। प्राचीन एवं मध्यकालीन संगीत में मृदंग नाम से ही अवनद्य वाद्य का परिचय मिलता है। मृदंग के स्थान पर पखावज नाम का प्रयोग मध्ययुग से प्रारम्भ हुआ। पन्द्रहवीं शताब्दी तक कहीं भी पखावज शब्द का प्रयोग प्राप्त नहीं होता।

पखावज शब्द का प्रयोग मुगलकाल के पश्चात ही प्रचार में आया परन्तु फिर भी पखावज एवं मृदंग दोंनो शब्दों का प्रयोग एक ही अवनद्य वाद्य के लिए होता रहा जो परम्परा वतर्मान में भी स्थापित है। आज उत्तर भारतीय संगीत परम्परा मे मृदंग एवं पखावज दो पृथक अवनद्य वाद्य नहीं है। पखावज, मृदंग शब्द का ही पर्यायवाची है जो कि मध्ययुग में प्रचलित हुआ। विमलकान्त राय चौधरी ने अपनी पुस्तक भारतीय संगीत कोश में पखावज के परिचय के रुप लिखा है कि "पखावज" फारसी शब्द पख तथा आवाज से बना है। पख आवाज का अर्थ है जिसमें मन्द ध्वनि निकलती हो। पखावज को ही मृदंग कहा जाता है।

अभ्यास प्रश्न

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. तबले के मूल प्रवर्तक कौन थे?
2. तबले का मूल घराना कौन सा है?
3. पखावज का प्राचीन नाम क्या था?

2.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप प्राचीन काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्यों के विषय में जान चुके होंगे। साथ ही आप मध्य काल व आधुनिक काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्यों को भी जान चुके होंगे। आप यह भी जान चुके होंगे कि प्राचीन काल, मध्य काल व आधुनिक काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्यों के नामों में भिन्नता रही है। आप तबले की उत्पत्ति एवं विकास के विषय में भी जान गए होंगे। तबले की उत्पत्ति के विषय में कई मान्यताएं है किन्तु इसका इतिहास लगभग 300–350 वर्ष पुराना माना गया है।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.3 क) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, कुष्ट व अतिस्वर
2. भूमि दुदुम्भी
3. पखावज तथा वीणा
4. वेद व्यास
5. अठारह पुराण
6. वायुपुराण
7. पिच्छौरा वीणा
8. पटह
9. ढ़ोल
10. हुडका

2.4 क) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. मध्यकाल 2. प्रबन्ध गायन 3. मुहम्मद शाह रंगीले 4. घट/घटम

2.4 क) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. सिद्धार खाँ ढाढ़ी 2. दिल्ली घराना 3. मृदंग

2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भरत, नाट्यशास्त्र(अनु0–श्री बाबू शुक्ल शास्त्री), चौखम्बा पब्लिकेशन, वाराणसी, उ0प्र0।
2. मिश्र, डॉ0 लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
3. बृहस्पति, आचार्य, भरत का संगीत सिद्धान्त।
4. कसेल, डॉ0 नवजोत कौर, तत् वाद्यों की जननी वीणा, निर्मल पब्लिकेशन, दिल्ली।
5. वसन्त, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
6. चौधरी, डा0 सुभाष रानी, संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धान्त, कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
7. बंसल, डॉ0 परमानन्द, संगीत सागरिका, प्रासंगिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
8. शुक्ल, योगमाया, तबले का उदगम, विकास एवं वादन शैली।
9. मिस्त्री, आबान ई0, पखावज और तबला के घराने एवं परम्पराएं।
10. सेन, अरूण कुमार, भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन।
11. साभार गूगल।

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्राचीन काल में प्रयुक्त होने वाले अवनद्ध वाद्यों के बारे में विस्तार से समझाइए।

इकाई 3 – मार्ग संगीत, देशी संगीत, नायक, गायक, वाग्गेयकार, पंडित, कलावन्त, गीत, गन्धर्व, गान, अविरभाव, तिरोभाव, काकु व तान।

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 मार्गी संगीत
3.4 देशी संगीत
3.5 नायक
3.6 गायक
3.7 वाग्गेयकार
3.8 पण्डित
3.9 कलावन्त
3.10 गीत
3.11 गन्धर्व व गान
3.12 तिरोभाव–अविर्भाव
3.13 काकु
3.14 तान
3.15 सारांश
3.16 शब्दावली
3.17 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.19 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.20 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम बी0ए0एम0टी0(एन0)—301 की तीसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात आप भारतीय संगीत के इतिहास तथा प्राचीन, मध्य व आधुनिक काल में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख भारतीय अवनद्य वाद्यों के बारे में जान चुके होंगे।

इस इकाई में परम्परागत भारतीय संगीत के सैद्धान्तिक पक्ष को लेते हुए यह विभिन्न संगीतज्ञ वर्ग एवं शैलियों जैसे मार्गी संगीत, देशी संगीत, नायक, गायक, वाग्गेयकार, पण्डित, कलावन्त, गीत, गन्धर्व, गान, अविर्भाव, तिरोभाव, काकु और तान के बारे में बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप मार्गी संगीत, देशी संगीत, गन्धर्व, गान के साथ—साथ संगीतज्ञ वर्ग वाग्गेयकार, पंडित, कलावन्त, गायक आदि के विषय में भली भांति जान सकेंगे। मार्गी संगीत एवं देशी संगीत का प्रचलन किस समय था तथा इनका वर्तमान स्वरूप कैसा है, आप बता सकेंगे। इस इकाई में रागों के गायन—वादन में व्याप्त आविर्भाव—तिरोभाव, काकु एवं तान जैसे सौन्दर्यात्मक तत्वों के स्वरूप एवं प्रयोग को भी जान सकेंगे। प्राचीन समय में मोक्ष प्राप्ति हेतु मार्गी संगीत का प्रचलन बहुत अधिक था परन्तु धीरे—धीरे देशी संगीत ने जो मनोरंजन का साधन मात्र है, जगह ले ली है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :—

- बता सकेंगे कि प्राचीन काल से अभी तक गीत विधाओं का स्वरूप क्या रहा है।
- समझा सकेंगे कि मार्गी अथवा गन्धर्व तथा देशी अथवा गान आदि संगीत की दोनों धाराओं का समान्तर प्रचलन कैसे आपस में एक दूसरे से प्रभावित रहा है।
- समझा सकेंगे कि राग के सौन्दर्यात्मक तत्वों आविर्भाव, तिरोभाव, तान आदि की विशेषताओं एवं रचना विधि के क्या नियम एवं मान्यताएं हैं।
- बता सकेंगे कि नायक, गायक, वाग्गेयकार, पंडित, कलावन्त आदि को समाज में किस श्रेणी में रखा जाता है तथा इनकी विशेषताओं एवं गुणों का वर्गीकरण किस प्रकार किया गया है।
- बता सकेंगे कि आध्यात्मिक एवं लौकिक संगीत विधाओं का प्रचलन समयानुसार परिवर्तित होता आया है।

3.3 मार्गी संगीत

संगीत और धर्म का आरंभ से ही अटूट संबंध रहा है। संगीत की वह धारा, जिसका प्रयोग प्रभु की भक्ति के लिए किया गया, उसको मार्गी संगीत का नाम दिया गया। मार्गी से भाव मार्ग अर्थात रास्ता, परमात्मा तक पहुंचने का रास्ता। दूसरी तरफ वह संगीत जिसका प्रयोग लौकिक सम्मेलनों पर किया जाता था और उसका उद्देश्य केवल लोकरंजनकारी ही था, उसको देशी संगीत कहा गया।

"मार्गशीयभेदेन द्विधा संगीतमुच्यते।
वेदा मार्गाख्य संगीतं भरतायाब्रवीत्स्वयम्।
गीतं वाद्यं नृत्यं च त्रयं संगीतमुच्यते।
मार्गदेशीविभागेन संगीतं द्विविधं मतम्।"

मार्गी संगीत के नियम बहुत कठोर थे और उनमें अपनी इच्छा के अनुसार कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। जबकि देशी संगीत समय के परिवर्तन के साथ ही साथ लोकरूचि के अनुसार भी बदलता रहता था। संगीत की ये दोनों धाराएं समानान्तर रूप से प्राचीनकाल से ही प्रचलित रही और एक—दूसरे को प्रभावित करती रही। इस प्रकार मार्गी एवं देशी संगीत का आपस में आदान—प्रदान आरंभ से चलता रहा। *डॉ. परांजपे लिखते हैं—"मार्गी संगीत की तुलना यदि गंगा नदी के धीर, गंभीर एवं प्रवाह से की जाए तो देशी संगीत की तुलना पहाड़ी देशों में उन्मुक्त रूप से बहते हुए झरनों से की जा सकती है।"*

जिस संगीत का प्रयोग गान्धर्व लोग करते थे, उसको गन्धर्व संगीत कहा जाता था। इसके गायन के साथ वाद्यों की संगति की जाती थी। इसलिए इस काल में गायन तथा वादन इन दोनों

का समावेश होता था। भरत काल में गन्धर्व एक शास्त्र का रूप ले चुका था और इसमें स्वर, ताल और पद, इन तीनों अंगों का होना जरूरी था। गन्धर्व संगीत शब्द प्रधान था, मार्गी संगीत गन्धर्व का ही रूप था।

आधुनिक काल में संगीत की किसी भी धारा के लिए मार्गी और देशी शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता। मार्गी के स्थान पर शास्त्रीय संगीत शब्द तथा देशी के स्थान पर लोक शब्द का प्रयोग किया जाता है। संगीत को तब ही उत्तम समझा जाता है, जब उसमें निम्न प्रकार के पक्ष मौजूद हों–

1. भाव पक्ष 2. कला पक्ष

<u>मार्गी संगीत</u> – मार्गी संगीत वह संगीत था जिसका सम्बन्ध मोक्ष–प्राप्ति के लिए ही किया जाता था। मार्गी का शाब्दिक अर्थ है–मार्ग अर्थात् रास्ता और रास्ते से भाव है परमात्मा तक पहुंचने का रास्ता। ऋषियों–मुनियों, पीर–पैगम्बरों और गुरूओं ने यह अनुभव किया कि संगीत में एकाग्र करने की क्षमता है। सत्व गुणी संगीत मनुष्य के मन को अपने में लीन करके परमात्मा की भक्ति में लीन कर सकता है। तब उन्होंने इस संगीत का सहारा लिया, जिसको मार्गी संगीत का नाम दिया गया। मार्गी संगीत का मुख्य उद्देश्य अध्यात्मवाद ही था। उद्देश्य–पूर्ति के बाद उन्होंने इस संगीत को कठोर नियमों में जकड़ दिया। इस संगीत में लोगों की रूचि के अनुसार कोई भी परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। प्राचीन काल से संगीत भारतीय संस्कृति एवं जनजीवन का अभिन्न अंग रहा है।

मार्गी संगीत का वास्तवितक रूप क्या था, इसके बारे में स्पष्टीकरण देना कठिन है। आधुनिक युग में यह भी कहा जाता है कि मार्गी संगीत का सम्बन्ध सामवेद की ऋचाओं से माना जाता था अथवा उस संगीत को मार्गी संगीत कहा जाता है जिसका सम्बन्ध अध्यात्मवाद के साथ था। ईश्वर संबंधी चिन्तन के लिए, मोक्ष प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए, नैतिक उत्थान के लिए अथवा 'रसो वै सः' कहकर रस के चरमोतकृष्ट स्वरूप का आस्वादन करने के लिए आध्यात्मवादियों द्वारा जहाँ साधना या योगसाधना को महत्व दिया गया और जीवन की भौतिक सुन्दरताओं से दूर रहकर एकाग्र चिंतन करते हुए समाधि की अवस्था को महत्व दिया गया। वहीं दूसरे मार्ग में जीवन को चार विभागों में विभाजित करके आयु के अनुसार जीवन को सुन्दर व सुखद रूप में व्यतीत करते हुए भी उसमें लिप्त न होकर अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति के प्रयत्न को महत्व दिया गया। एकान्तिक साधना में भी और गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी, की जाने वाली साधना में सौन्दर्य का विशेष महत्व होता है। सांसारिक स्तर पर सौन्दर्य शारीरिक व मानसिक सुख का कारण बन कर आनन्ददायक प्रतीत होता है जबकि यही सौन्दर्य आध्यात्मिक स्तर पर मानव के नैतिक उत्थान का कारण बनकर जिस असीम आनन्द में परिवर्तित होता है उसे हम दिव्यानुभूति कह सकते हैं। यह आध्यात्मिक अनुभूति ही परम सत्य की प्राप्ति का कारण बनती है और नादोपासना या योगियों द्वारा की जाने वाली ब्रह्म की उपासना, उस लक्ष्य प्राप्ति का साधन। सम्भवतः इसी रहस्य को जानते हुए विद्वानों ने नाद को ''तस्मान्नादात्मकं जगत्'' कहकर, रस को 'रसो वै सः' कहकर तथा ब्रह्म को ''अहं ब्रह्मास्मि'' कहकर नाद, रस व ब्रह्म और ब्रह्माण्ड की एकाकारता के रूप में साध्य व साधन की अभिन्नता को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

<u>वैदिक काल में मार्गी संगीत का रूप</u> – वैदिक काल में साम गान शास्त्रीय संगीत के उद्गम स्रोत की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि अपौरूषेय, श्रेयस् की प्राप्ति कराने वाला, भौतिकता से परे ले जाने में सक्षम, साधना के समस्त अंगों को स्वीकार करने वाला, विशिष्ट उद्देश्य से परिपूर्ण एवं विशिष्ट नियमों से अनुशासित होने के कारण जो संगीत मर्यादाबद्ध है वही शास्त्रीय, मार्ग या शिष्ट संगीत है, यदि ऐसा कहा जाए तो सम्भवतः अनुचित न होगा। सामवेद को संगीत का मूल कहा जाता है। साम का गान ऋगवेद की ऋचाओं के आश्रय से किया जाता रहा है। यदि ऋक् को वाणी माना जाए तो साम उसका प्राणभूत है। सामसंहिता में ऋकसंहिता के सभी मन्त्र नहीं हैं। इसमें ऋक् के चुने हुए मन्त्रों का संग्रह है। छान्दोग्योपनिषद के अनुसार साम यानि सा + अम के संवाद से विश्व का संगीत चल रहा है। यदि 'सा' ऋक है तो 'अम' आलाप यानि साम है। यदि 'सा' शब्द है तो 'अम' छंद है। इस प्रकार ऋग्वेद की ऋचाएं सामवेद का आधार कहलाती हैं।

अभिप्राय यह है कि सामवेद ने शब्द ऋगवेद से लिया है और स्वर उसका स्वयं का है। अतः साम का अर्थ है ऋचाओं के आधार पर किया गया गान जिसमें मातु या बोल ऋगवेद के हैं और धातु या स्वर साम का है। साम का जो निजी है, स्वयं का है वह स्वर है। इस प्रकार सामवेद अपने गान के पदों को ऋगवेद से लेता है। विशिष्ट नियमों से अनुशासित साम का गान मार्गी संगीत का ही रूप रहा होगा।

सामगान में तीन गायक होते थे जो प्रस्तोता, उद्‌गाता और प्रतिहर्ता के नाम से जाने जाते थे। मुख्य गायक उद्‌गाता होता था, प्रस्तोता और प्रतिहर्ता उसके सहायक होते थे।

1. <u>प्रस्ताव</u> – प्रस्तोता, उद्‌गाता और प्रतिहर्ता, ये तीनों गायक मिलकर सबसे पहले 'हुं' का स्वर में उच्चारण करते थे। जिस प्रकार आजकल गायक आरम्भ में आकार का उच्चारण करते हैं, उसी प्रकार उस समय तीनों गायक मिलकर 'हिंकार' का उच्चारण करते थे। उसके साथ ही प्रस्तोता सामगीत के प्रस्ताव भाग को ओंकार सहित गाता था। मन्त्र या गीत के आरम्भ को 'प्रस्ताव' कहते थे। यह गीत का मुखड़ा होता था। 'प्रस्ताव' एक विशेष प्रकार का स्तोत्र था जो ब्राह्मण या प्रस्तोता द्वारा सामगान के आरम्भ में गाया जाता था।

2. <u>उद्‌गीत</u> – इस विभाग को गाने वाला ऋत्विज 'उद्‌गाता' कहलाता था। ये भाग सामगान में सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। 'उद्‌गीत' विभाग के सभी स्तोत्रों का गान 'ओंकार' से प्रारम्भ किया जाना आवश्यक था। उदगीत्, गीत का मुख्य और अधिकांश भाग होता था। 'उद्‌गाता' का अर्थ है ऊँचा गाने वाला। प्रायः 'उद्‌गीत' भाग उच्च स्वरों में होता था।

3. <u>प्रतिहार</u> – 'प्रतिहार' भाग के गाने वाले को प्रतिहर्ता कहते थे। प्रतिहर्ता उद्‌गीत के अन्तिम पद से गाने को पकड़ कर 'प्रतिहार' भाग गाता था। 'प्रतिहार' का अर्थ है दो विभागों को जोड़ने वाला।

4. <u>उपद्रव</u> – उपद्रव का गान उद्‌गाता यानि प्रमुख सामगायक करता था। ये प्रतिहार के अन्त के भाग का गान करता था।

5. <u>निधन</u> – सामगान के अन्तिम भाग को 'निधन' कहते थे। 'ओम्' का उच्चारण कर जब तीनों ऋत्विज यानि प्रस्तोता, उद्‌गाता और प्रतिहार एक साथ मिलकर सामगान करते थे तब वही भाग निधन कहलाता था।

सामगान भी इसी दृष्टिकोण के अन्तर्गत आलाप आदि नियमों से तथा शैलीगत विशिष्टताओं के कारण मर्यादाबद्ध, ऋक् तथा यजुष से उत्पन्न होने के कारण अपौरूषेय, ऋषियों द्वारा प्रयुक्त होने के कारण ब्रह्मोन्मुख साधना से परिपूरित, विशिष्ट ऋचाओं को ही गेयात्मकता प्रदान करने के कारण देवताओं की स्तुतियों से परिपूर्ण, शब्दों की अपेक्षा गेयात्मकता एवं प्रवाहात्मकता का अधिक महत्व होने के कारण भावात्मक सूक्षमता पर आधारित एवं शास्त्रोक्त परम्परा से आबद्ध होने के कारण शास्त्रीय परम्परा से परिपूर्ण, मार्गी संगीत का ही द्योतक है। जिस प्रकार प्रत्येक कालखण्ड में लोक संगीत शास्त्रीय संगीत से तथा शास्त्रीय संगीत लोक संगीत से प्रेरित रहा है उसी प्रकार वैदिक काल में भी इन दोनों के एक दूसरे से प्रभावित होना स्वाभाविक है। आधुनिक युग में "मार्गी संगीत" शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता है। जो आधुनिक काल में शास्त्रीय संगीत और अशास्त्रीय संगीत प्रचलित है उसका मूल उद्‌देश्य लोकरंजनकारी और परिवर्तनशील है, उसको गान कहा जाता है। गान को ही देशी संगीत भी कहा जाता है।

<u>मार्गी संगीत की विशेषताएं :–</u>

1. मार्गी संगीत का सम्बन्ध अध्यात्मवाद के साथ था।
2. मार्गी संगीत के नियम कठोर थे और उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकता था।
3. मार्गी संगीत शब्द प्रधान था।
4. कहा जाता है कि मार्गी संगीत की रचना बह्मा जी ने खुद की और फिर उसकी शिक्षा भरत को दी।
5. गन्धर्व इस संगीत में बहुत निपुण होते थे। इसलिए इसका प्रयोग गन्धर्व जाति तक सीमित रहा।
6. आधुनिक युग में मार्गी संगीत का स्वरूप नहीं मिलता। मार्गी के स्थान पर शास्त्रीय संगीत प्रचलित है।

3.4 देशी संगीत

देशी संगीत – देशी गान से भाव उस संगीत से है जिसका प्रयोग साधारण लोगों ने अपने मनोरंजन के लिए किया। अर्थात् देशी संगीत लोगों का संगीत था उसका मुख्य उद्देश्य लोगों का मनोरंजन करना था। जो संगीत, संगीताचार्य और संगीतकारों ने अपनी बुद्धि से और विशेष कलात्मकता से लोक–रूचि अनुसार पेश किया, उसको गान कहा गया। शारंगदेव ने ऐसे संगीत को देशी संगीत कहा। देशी संगीत की परिभाषा देते हुए पं0 शारंगदेव ने कहा है कि भिन्न–भिन्न देशों में जनरूचि के अनुसार मनुष्य इसको गा–बजाकर या नृत्य करके अपने ह्रदय का मनोरंजन करता है, उसको देशी संगीत कहा जाता है। इसी प्रकार पं0 दामोदर ने भी कहा है कि वह संगीत, जो देश के भिन्न–भिन्न भागों में, वहां के रीती–रिवाजों के अनुसार जनता का मनोरंजन करे, उसको देशी संगीत कहा जाता है। उपर्युक्त कथन से यही कहा जा सकता है कि संगीत की जिस धारा को संगीतकारों और संगीतचार्यों ने जनरूचि के अनुसार समय–समय पर इसमें परिवर्तन करके पेश किया, उसे गान संगीत कहा गया। असल में गान को ही देशी संगीत कहा गया।

वैदिक कालीन जीवन में देशी संगीत का पर्याप्त प्रचलन था। धार्मिक एवं लौकिक समारोहों पर गीत, वाद्य तथा नृत्य के द्वारा लोगों का मनोरंजन किया जाता था। गीत तथा वाद्यों के साथ ढोल, दुन्दुभि जैसे वाद्यों की संगति की जाती थी। चीनी मिट्टी की एक मुद्रा में एक पुरूष को व्याध्र के समक्ष ढोल बजाते हुए अंकित किया गया है। आज भी आदिवासी जातियों में व्याघ्रादि हिस्र पशुओं के प्रवेश द्वार पर ग्राम के चारों ओर ढोलक के द्वारा भयंकर गर्जना करने की प्रणाली विद्यमान है। हड़प्पा से प्राप्त एक दूसरे मुद्रा में वाद्य के सम्मुख ढोल बजाए जाने का दृश्य है ऐसा प्रतीत होता है कि सिन्धु प्रदेश में ढोल के साथ–साथ तार के वाद्य भी प्रचलित थे। दो मुद्राओं में मृदंग जैसी वस्तुएं अंकित हैं। ढोल का चित्रण भी एक दूसरी मुद्रा पर है। इनमें एक स्त्री ढोल को बगल में दबायए हुए है। तत्कालीन समाज में अनुशासित सामगान रूपी मार्गी संगीत के साथ–साथ देशी संगीत प्रचुर मात्रा में प्रयोजनीय था। खुले प्रांगण में नृत्य कला के कार्यक्रम में नर–नारी दोनों का भाग लेना, वीणा और तुणव की ध्वनि के साथ गान करते जनसमूह का रात्रि जागरण करना, सोमयाग के विशेष अवसर पर सिर पर कलश रख मार्जलीय परिक्रमा करती हुई दासकुमारियों के नाचने गाने का उल्लेख (तै.सं. 7/5/10/3), बुनाई करते हुए मनोविनोद के लिए गाए गए गीत आदि इस बात का प्रमाण है कि सामान्य समाज में भी संगीत का प्रयोग किया जाता था।

अथर्ववेद में उल्लिखित 'गाथा', 'नाराशंसी' तथा 'रैभी' आदि गीत प्रकार जनसामान्य द्वारा प्रयुक्त गीत ही थे, ऐसा विद्वानों का मत है। क्योंकि डा.परांजपे के अनुसार गाथा आदि गीतों का स्वरूप परम्परागत वीरकाव्य की भांति था जिनका गायन व्यवसायी गायकों द्वारा लौकिक समारोहों पर, राजसभाओं में या विवाह आदि अवसरों पर किया जाता था। नाराशंसी गीत प्रकारों में राजाओं की प्रशंसा की जाती थी। विद्वानों का यह भी मत है कि गाथा गीत प्रकार परम्परागत लौकिक पुरूषों से सम्बन्धित होते थे तथा नाराशंसी गीत प्रकार समकालीन राजाओं की स्तुति से परिपूर्ण होते थे। इन गीत प्रकारों को गाने वाले व्यवसायी गायक–वादक सूत व शैलूष आदि जातियों से सम्बन्ध रखते थे जो सम्भवतः उच्च जातियां नहीं थी।

गायन, वादन और नृत्य तीनों का विकास हमें वैदिक युग में मिलता है। वीणा वाद्य का विकास इस युग में हो चुका था। गायन के साथ इसका प्रयोग भी हो चुका था। अधिकतर नारियां वीणा–वादन करती थी। संगीत के विशेष आयोजन होते थे और नर्तकियां उनमें खुलकर भाग लेती थी। समाज में नृत्य–कला काफी विकसित हो रही थी। इसका प्रमाण ऋगवेद के श्लोक (5/33/6) में आया है– **'नृत्यमनों अमृता'।**

आर्य जाति स्वभाव से ही संगीतप्रिय थी। वैदिक युग में देशी संगीत आयोजन और प्रतियोगिताओं का एक मनोरंजन रूप 'समन' के नाम से देखने में आता है। यह समन एक प्रकार से सांगीतिक मेला था। जहां आमोद–प्रमोद के लिए युवक–युवतियां जाते थे। कुमार और कुमारियां वहां वर की खोज में जाते थे। इस सांगीतिक उत्सव में कुमारियों कि सांगीतिक प्रतिभा की जांच होती थी और सफल एवं प्रतिभा सम्पन्न कुमारियों का चयन विवाह के लिए हो जाता था। यह 'समन' आगे चल कर 'समज्जा' के नाम से प्रस्फुटित हुआ।

वैदिक काल में देशी संगीत को उच्च सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। इसी युग में वीणा का प्रयोग होने लगा था, जो कि पूर्ण सांगीतिक वाद्य यन्त्र था। इस काल में गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों दृष्टियों का पर्याप्त प्रचलन दृष्टिगोचर होता है। गीत के लिए गीर, गातु, गाथा, गायन्न, गीति तथा साम शब्दों का प्रयोग होता है। ऋगवेद की रचनाएं स्वरावलियों में निबद्ध होने के कारण 'स्तोत्र' कहलाती थी। गीत–प्रबन्धों को गाथा कहा जाता था, जो एक विशिष्ट तथा परम्परागत गीत प्रकार है और इन गाथाओं का गायन धार्मिक तथा लौकिक समारोहों पर किया जाता था। इनके गायक 'गायन्नि्' कहलाते थे। भारत धर्म प्रधान देश है। भारतीय विचारधारा सदा से आदर्श की भावभूमि पर प्रवाहित होती रही है तथा उसका प्रयोजन लोक कल्याण रहा है। इसके कण–कण में राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर की आत्मा समाई हुई है। पूजा के अवसरों पर गाए जाने वाले संगीत की पवित्रता और देशी संगीत धुनों की मनोरंजकता ऐसी धूरियां हैं जिनके आस–पास सारा संगीत घूमता है। प्राचीन जातियों का जो साहित्य उपलब्ध है उसमें प्रार्थनाओं, पूजागीतों, स्तुतियों और वंदनाओं की मात्रा अधिक है।

देशी संगीत के दो मुख्य भेद निबद्ध और अनिबद्ध हैं। इसको भरत, मतंग और शारंगदेव ने भी माना है।

1. निबद्ध गायन – जो सांगीतिक रचना तालबद्ध और छंदबद्ध आदि हो उसको निबद्ध गायन के अन्तर्गत माना जाता है। प्राचीन काल में प्रबंध, वस्तुरूपक आदि रचनाएं और आधुनिक युग में ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, तराना आदि इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

2. अनिबद्ध गायन – जो सांगीतिक सामग्री ताल में न बंधी हो, उसे अनिबद्ध गायन की श्रेणी में रखा जाता है। इस श्रेणी के अन्तर्गत आलाप को माना जाता है। निबद्ध गायन के अन्तर्गत आने वाली रचनाएं, शैलियां, कलात्मकता और भावुकता प्रकट करती हैं। जबकि अनिबद्ध गायन के अन्तर्गत आलाप गायन में(विशेष सांगीतिक शैलियां, रचनाएं आदि को जिस राग में पेश करना हो, उसके विशेष स्वरों की बढ़त करते हुए अपनी भावना अनुकूल) राग स्पष्टीकरण किया जाता है। शारंगदेव ने इसको आलिप्त गान कहा है। आलिप्त का अर्थ है विस्तार करना।

आधुनिक काल में देशी संगीत का रूप – आज का शास्त्रीय संगीत देशी संगीत की ही देन है। शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत जो परिवर्तन समय–समय पर शैलियों के रूप में, उनकी परम्पराओं के रूप में आए, वे देशी संगीत के कारण ही थे। शास्त्रीय संगीत को लोकप्रिय बनाने के लिए उनमें समय के अनुसार नए–नए तत्वों और शैलियों को अपनाया गया। शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत आने वाली शैलियों जैसे–ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी आदि सभी देशी संगीत की ही देन हैं। ये शैलियां अलग–अलग समय में प्रचलित रही हैं जैसे मध्य काल में ध्रुपद का अधिक प्रचार रहा, उसके पश्चात समय के परिवर्तन के साथ लोगों की रूचि अनुसार ख्याल शैली का अविष्कार हुआ। मुहम्मद शाह रंगीले के समय तक सदारंग–अदारंग ने अनेक ख्यालों की रचना की परन्तु वह स्वयं ध्रुपद शैली ही गाते थे क्योंकि उस समय तक ख्याल को नीच वर्ग की शैली माना जाता था। परन्तु धीरे–धीरे ख्याल का अधिक प्रचार हो गया और ध्रुपद का प्रचार कम हो गया। इस प्रकार ख्याल के युग में ठुमरी और गज़ल आदि गीत शैलियों को अशास्त्रीय संगीत माना जाता था। परन्तु धीरे–धीरे ये शैलियां भी लोकप्रिय बन गई। उच्च कोटि के संगीतकार शास्त्रीय संगीत पेश करते समय कई प्रकार की लोकधुनों को गाते और वाद्यों पर बजाते हैं और लोग उनकी प्रशंसा करते हैं। इस प्रकार लोकधुनें रागों का रूप धारण कर लेती हैं। खमाज, खम्भावती, काफी, पीलू, मांड़, सारंग आदि रागों के नाम इस वर्ग में आते हैं।

इस प्रकार मार्गी और देशी का परस्पर एक विशेष सम्बन्ध रहा और समय–समय पर यह एक–दूसरे को प्रभावित करती रही हैं। लोक–संगीत का मौलिक पक्ष बहुत कम मिलता है। उसका मुख्य कारण है कि चित्रपट और शास्त्रीय संगीतकारों ने लोकधुनों को शास्त्रीय संगीत में इस प्रकार सम्मिलित कर दिया है कि लोक–संगीत का मौलिक पक्ष दिन–प्रतिदिन कम होता जा रहा है। आज का शास्त्रीय संगीत और अशास्त्रीय संगीत देशी संगीत का ही रूप है।

देशी संगीत प्रत्येक जाति, प्रत्येक धर्म का असली रूप होता है। इसमें लोक संस्कृति के अंशों का बहुत ही सुंदर ढंग से वर्णन किया गया होता है। देशी संगीत का मुख्य उद्‌देश्य लोकरंजनकारी था, इसलिए इसमें समय–समय पर परिवर्तन आता रहा है।

<u>देशी संगीत की विशेषताएं</u> :–

1. देशी संगीत का मूल उद्देश्य जनरंजनकारी था।
2. देशी संगीत प्रत्येक देश और प्रांत का अलग–अलग होता है।
3. देशी संगीत स्वर प्रधान होता है।
4. देशी संगीत में लोगों की रूचि अनुसार परिवर्तन होता रहता है।
5. देशी संगीत के नियम मार्गी संगीत की भांति कठोर नहीं होते हैं।
6. आधुनिक युग में देशी संगीत शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता बल्कि उसके स्थान पर लोक संगीत का प्रयोग होता है।

<u>मार्गी संगीत और देशी संगीत में अन्तर :–</u>

1. मार्गी संगीत शब्द प्रधान था जबकि देशी संगीत स्वर प्रधान रहा।
2. मार्गी संगीत का सम्बन्ध अध्यात्मवाद के साथ था जबकि देशी संगीत का सम्बन्ध जनरंजनकारी था।
3. मार्गी संगीत के बारे में यह कहा जाता है कि इसको ब्रह्मा जी ने खुद बनाया जबकि देशी संगीत मनुष्य ने अपनी रूचि के अनुसार बनाया।
4. मार्गी संगीत का क्या स्वरूप था, इसके बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती परन्तु देशी संगीत प्रत्येक प्रांत का अलग–अलग होता है।
5. मार्गी संगीत के नियम बहुत कठोर होते थे परन्तु देशी संगीत में नियमों की कठोरता नहीं होती थी।
6. मार्गी संगीत का दूसरा नाम गन्धर्व था जबकि देशी संगीत का दूसरा नाम गान था।
7. आधुनिक काल में मार्गी संगीत के स्थान पर शास्त्रीय और देशी संगीत के स्थान पर लोक संगीत शब्द का प्रयोग किया जाता है।

3.5 नायक

गुरू से ग्रहण की गई विद्या या कला को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने वाला नायक कहलाता है। गुरू से वह संगीत कला उसी रूप में ग्रहण की थी अतः पीढ़ी दर पीढ़ी कला में आए निखार को और अधिक समृद्ध करते हुए बिना परिवर्तन किए हुए कला को एक ही रूप में रखने वाला कलाकार नायक कहलाता है।

किसी एक घराने में जब कलाकार किसी घराने का मिश्रण न करे और श्रोताओं के सुनते ही यह लगे कि शिष्य में तो उसके गरू की छाया प्रतिबिम्बित हो रही है तो शिष्य का यही गुण उसे नायक की पदवी दिलाता है तथा उसकी कला नायकी कहलाती है। नायकी की यदि ईमानदारी से रक्षा की जाए तो अनेक पीढ़ियों के संस्कार उसकी कला में स्वतः एकत्रित होते रहते हैं, फलतः उसका प्रभाव भी होना स्वाभाविक है।

प्राचीन काल में संगीत से वर्षा होना, पत्थर पिघलना, पशु–पक्षियों का संगीत के वशीभूत होना आदि किवदन्तियाँ आज भी समाज में प्रचलित हैं। यह कहा जा सकता है कि यदि हमने नायकी की रक्षा की होती अर्थात जैसा गुरू ने सिखाया वैसा ही शिष्य अगली पीढ़ियों को बिना परिवर्तन किए देते जाते तो वर्तमान युग में भी संगीत का वही प्रभाव होता पर ऐसा नहीं हुआ। यानी हमने नायकी को बचा कर नहीं रखा परिणामतः हमारे संगीत का इतना बड़ा ह्रास हो गया।

<u>नायकी के ह्रास के कारण</u> – (1)संगीतज्ञों के पास समय की कमी (2)खानपान में गिरावट (3)नैतिकता का पतन (4)संगीत कला के प्रति समर्पण में कमी (5)धन का लोभ (6)समय की मांग (7)मानव की सहज कमज़ोरी आदि।

मनुष्य गुणों को देर से ग्रहण करता है और अवगुणों को सहज ही अपना लेता है, शायद इसीलिए शारंगदेव को संगीत–रत्नाकर(भाग–2, पृष्ठ–156–169) में गायकों के गुणों के साथ अवगुणों को भी विस्तार से देना पड़ा।

वर्तमान में भातखण्डे जी द्वारा दी गई बन्दिशों को नायकी का उदाहरण कहा जा सकता है। प्राचीन काल में नायक बैजू नायक, गोपाल नायक, चरजू आदि प्रसिद्ध संगीतज्ञ हुए हैं। हकीम मो0 करम इमाम ने अपने ग्रन्थ 'मादिनुल मूसीक़ी' में 12 नायकों के नाम इस प्रकार दिए हैः–
(1) भानु, (2) लोहंग, (3) डालु (4) भगवान (5) गोपालदास (6) बैजू (7) पाण्डे (8) छज्जू (9) बक्षु (10) घोपडु (11) मीरामध (12) अमीर खुसरो

3.6 गायक

किसी भी विशिष्ट संगीत विधा की गायकी को जानने वाले व्यक्ति को गायक कहा जाता हैं। गायक अपनी संगीत विधा में निपुण होता है तथा उसे गायकी के विभिन्न पक्षों की जानकारी होती हैं। प्राचीन से देशी संगीत के अन्तर्गत अनेक परिवर्तन हुए, अतः इस प्रकार जनरूची के कारण परिवर्तनशील विभिन्न विधाओं की गायकी को जानने वाला गायक ही है। प्राचीन काल में जब संगीत, गांधर्व से अलग हुआ और जो 'गान' कहलाया उसका उद्देश्य ही जन–मन–रंजन करना था। वही गान आगे चल कर देशी–संगीत कहलाया और गांधर्व मार्ग–संगीत के नाम से जाना गया। रूचियाँ सदा से परिवर्तित होती रहती हैं। अतः गायकों को भी अपने संगीत में जन–रूचि के अनुसार कुछ परिवर्तन करना आवश्यक हो गया था, अतः संगीत भी परिर्वतनशील हुआ।

भरत के समय में जो संगीत था, शारंगदेव के समय वह केवल लक्षण बन गया, यानी संगीत में परिवर्तन हो गया। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि जन–रूचि परिवर्तित हो गई। समय के साथ संगीत बदलता गया और गायकी में भी परिवर्तन हुआ। जाति–गान के स्थान पर ग्राम–राग और देशी–राग आए और ध्रुवा के स्थान पर प्रबन्ध आया। उसके पश्चात ध्रुपद–शैली और आगे चलकर ख्याल–शैली का प्रचार हुआ। ख्याल–शैली में भी आलाप में कमी आई और तान को अधिक महत्व दिया जाने लगा। कहने का भाव यह है कि गायकी जन–रूचि पर आधारित है तथा जो अपनी क्षमता और श्रोताओं की रूचि के अनुसार अपनी गायकी को प्रस्तुत करता है, वही गायक कहलाता है।

3.7 वाग्गेयकार

"शब्दानुशासनमभिधान प्रवीणताछनदः प्रभेदवेदित्यमलंकरेषु कौशलम्
रस भाव परिज्ञान देश स्थितिषु चातुरी"

अर्थात वाणी की रचना करके उसको गेय रूप देने वाला व्यक्ति, जिसको व्याकरण, छन्द, कोश, अलंकार, रस, भाव आदि की पूरी जानकारी हो, उसे वाग्गेयकार कहा जाता है। पं. भातखंडे जी के अनुसार "प्राचीन समय में जिन संगीत विद्वानों को पद–रचना, स्वर–रचना दोनों का ज्ञान होता था, उनको वाग्गेयकार की संज्ञा दी जाती थी।"

यह शब्द तीन शब्दों के मेल से बना है। वाक् का अर्थ है पद–रचना, गेय का अर्थ है गाया जाने वाला और कार का अर्थ है करने वाला, अर्थात् वाणी की रचना करके उसको गायन रूप देने वाले व्यक्ति को वाग्गेयकार कहा जाता है। पं. शारंगदेव, पं. दामोदर ने इसकी विशेषताओं का वर्णन करते समय मातु और धातु शब्द का प्रयोग किया है। दूसरे शब्दों में 'वाक्' अर्थात पद–रचना को मातु और गीत पक्ष को धातु कहते हैं। चैतन्य देव 'एन इंट्रोडक्शन टू इण्डियन म्युज़िक' में इसके बारे में लिखते हैं– "A Composer is known as Vaggeyakar. This word is derived from three others Vak (word), Geya (song), Kara (One who makes). As the term shows, a Composer must be a master of word and music. If on the other hand, a person who writes only the Literature of a song he is Matukara (matu word of speech) ; If he provides the music to the given poem he is Dhatukara (Dhatu score musical part of song). But a Vaggeyakara Composes both the poem and music, that is he creates a complete song."

संगीत मकरंद में चौथे अध्याय के 21वें श्लोक से लेकर 47वें श्लोक तक वाग्गेयकार के गुणों का वर्णन किया गया है।

1. जो संगीत में निपुण हो।
2. जिसको संगीत के विभिन्न पक्षों की पूरी जानकारी हो।
3. जिसको देश की विभिन्न भाषाओं की जानकारी हो।
4. जिसको व्याकरण की पूरी जानकारी हो।
5. छन्द के भेदों को जानने वाला हो।
6. साहित्य में वर्णित विभिन्न अलंकारों, उपमाओं का ज्ञान हो।
7. विभिन्न रसों के लिए उचित शब्दावली का ज्ञान हो।
8. उचित लय और ताल के प्रयोग करने की पूरी जानकारी हो।
9. संगीत के विभिन्न काकू भेदों का ज्ञान हो।
10. जो बुद्धिमान और अपनी कला के द्वारा श्रोताओं को आकर्षित कर सके।
11. जिसको संगीत के परिभाषिक तत्वों(सैद्धांतिक और क्रियात्मक) की पूर्ण जानकारी हो।
12. जिसकी स्मरण शक्ति तेज़ हो।
13. जिसकी संगीत के परम्परागत पक्ष की पूर्ण जानकारी हो।
14. जो पढ़ा–लिखा हो।

प्राचीन शास्त्रों में तीन प्रकार के वाग्गेयकार का वर्णन मिलता है–उत्तम, मध्यम, निम्न(घटिया)। जिस व्यक्ति में उपर्युक्त वर्णित सारे गुण हों, उसे उत्तम वाग्गेयकार कहा जाता है। जो स्वर–रचना में तो निपुण हो परन्तु पद–रचना में पूर्ण जानकारी न रखता हो, उसे मध्यम वाग्गेयकार कहा जाता है। जिसकी मातु(पद–रचना), गीत–रचना के उचित पक्ष की पूर्ण जानकारी न हो, उसे निम्न वाग्गेयकार कहा जाता है। संगीत में निम्न वाग्गेयकार का कोई स्थान नहीं है।

संगीत के शास्त्र में इनको नायक भी कहा जाता है। प्राचीन काल और मध्यकाल में वाग्गेयकारों के बहुत नाम मिल जाते हैं, जैसे–हरीदास, तानसेन, नायक बक्श, कौड़ी रंग, रंग बरस, तानसेन, अख्तर पिया, ललन पिया, कदर पिया आदि।

मध्यकालीन शास्त्रीय संगीत के वाग्गेयकार के अलावा भक्ति लहर के पीरों–फकीरों, गुरूओं को वाग्गेयकार कहा जा सकता है। डॉ. डी.एस.नरूला ने गुरू नानक देव जी को उत्तम वाग्गेयकार की उपाधि दी है। परन्तु इन वाग्गेयकार को शास्त्रीय संगीत की श्रेणी में रखना उचित नहीं है, क्योंकि इन्होंने अपनी वाणियों के प्रचार के लिए संगीत का केवल सहारा ही लिया है। मध्यकाल के इस श्रेणी के वाग्गेयकारों के नाम इस तरह हैं–गुरू नानक देव जी, कबीर जी, सूरदास, मीरा बाई, जासो बाई, सहिजो बाई, मलूक दास, परमानंद आदि। जिस तरह भक्ति काल का कवि खुद संगीतकार भी था, उस तरह आज का कवि नहीं है। आज का कवि अपनी रचना में सांगीतिक पक्ष का ध्यान तो जरूर रखता है परन्तु यह जरूरी नहीं कि वह उसकी धुन को भावना के अनुकूल बना सके। संगीत को स्वर देने वालों के क्षेत्र भिन्न बन गए हैं। जिसको स्वरकार, संगीत निर्देशक, संगीतकार आदि कहा जाता है। इन कारणों से ही वर्तमान काल में शास्त्रीय वाग्गेयकारों की बहुत कमी है।

3.8 पण्डित

प्राचीन समय में जो विद्वान् संगीत–शास्त्र का पूर्ण ज्ञान रखता था तथा गायन–कला का साधारण ज्ञान रखता था, उसे पण्डित कहते थे। पण्डित संगीत शास्त्रों का निरन्तर अध्ययन करते हुए नवीन अनुसंधानों का संबंध उससे जोड़ता हैं। पण्डित रागों एवं तालों की पूर्ण शास्त्रात्मक अभिव्यक्ति को शास्त्रों में स्थान देने में सक्षम है। पण्डित संगीत के क्रियात्मक पक्ष की अभिव्यक्ति को भी शास्त्रों में स्थान दे सकता है। परन्तु उसे प्रदर्शित करना मध्यम श्रेणी में आता है। पण्डितों का संगीत को शास्त्रात्मक रूप में संरक्षण करने हेतु विशेष योगदान है। क्योंकि मध्यकाल से ही क्रियात्मक रूप में जो संगीत, विद्वान संगीतज्ञों के पास सुरक्षित था वह शास्त्रों में स्थान मिलने से ही संरक्षित रह पाया है। पण्डितों के संगीत शास्त्रों से हमें मध्यकाल से वर्तमान तक सम्पूर्ण सांगीतिक तत्वों, बंदिशों, रचनाओं के स्वरूप एवं प्रयोगों को लिखित रूप में जान पाए हैं। इस

प्रकार कहा जा सकता है कि पण्डितों द्वारा ही संगीत शास्त्रों का आर्विभाव एवं संगीत के विभिन्न पक्षों का संरक्षण सम्भव हो पाया है। पण्डित एवं वाग्गेयकार में यह विशेष अन्तर हैं कि वाग्गेयकार शास्त्र के साथ—साथ क्रियात्मक पक्ष का भी पूर्ण ज्ञान रखता है तथा वह साहित्य एवं अनेक भाषाओं को भी जानता है।

3.9 कलावन्त

किसी भी विशिष्ट कला विधा के निर्माता एवं प्रसारक को कलावन्त कहा जाता है। उस विशिष्ट कला के समस्त पक्षों को पीढ़ी दर पीढ़ी समृद्धशाली एवं लोकरंजन हेतू उसमें मर्यादित परिवर्तन करना भी कलावन्त का विशिष्ट कार्य है। निरन्तर अपनी कला विधा के विभिन्न पक्षों की समीक्षा करना एवं उसे समाज में उचित स्थान दिलाने में कलावन्त की विशेष भूमिका है। कलावन्त अपनी कला को परम्परा एवं सांस्कृतिक दृष्टि से निरन्तर बचाए हुए है। इन्हीं कलावन्तों के प्रयासों से परम्परागत कलाओं को बचाया जा सका है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि कलावन्त अपनी विशेष कला को समृद्धशाली बना रहें हैं, मूल रूप में सहेजे हुए हैं तथा पीढ़ी दर पीढ़ी इसका प्रसार करते रहे हैं।

3.10 गीत

जो सांगीतिक रचना तालबद्ध और छंदबद्ध आदि हो उसको गीत के अन्तर्गत माना जाता है। प्राचीन काल में प्रबंध, वस्तुरूपक आदि रचनाएं और आधुनिक युग में ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, तराना आदि इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। गीत के अन्तर्गत आने वाली रचनाएं एवं शैलियां, कलात्मकता और भावुकता प्रकट करती हैं।

आधुनिक संगीत में गीत रचना के मुख्य नियम(Laws of Musical Composition), शास्त्रीय संगीत में गीत रचना(Musical Composition) का विषय एक महत्वपूर्ण विषय है। प्रचलित शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत साधारणतः ध्रुपद, धमार, ख्याल(विलम्बित और द्रुत), टप्पा, ठुमरी, तराना आदि गीतों के भेद पाए जाते हैं। इस क्षेत्र में तानसेन, सदारंग, अदारंग, मनरंग, हररंग, शोरीमियाँ, रंगीले इत्यादि गीतकारों का विशेष स्थान है। आधुनिक काल भी नई—नई रचनाओं का समय है जिसमें अनेक नई तथा सुन्दर रचनाएं सुनने को मिलती हैं।

गीत रचना के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान रखना अति आवश्यक हैः—

(1) काव्य — सर्वप्रथम गीतकार को यह देखना है कि काव्य गेय, स्पष्ट, सरल है या नहीं। काव्य सरल साधारण श्रोताओं के समझ में आने वाला, हृदयग्राही तथा भावनात्मक होना चाहिए।

(2) रस — कविता के रस को ध्यान में रखते हुए उसके अनुकूल ही राग का चयन करना चाहिए। अधिकतर श्रृंगार, करूण, वीर, शान्त — ये चार रस ही संगीत में प्रधानता रखते हैं। इन चारों में भी श्रृंगार रस अधिक महत्वपूर्ण है। जिस रस का काव्य है उसी रस का राग चुनना आवश्यक है। उदाहरणार्थ श्रृंगार रस के राग काफी, विहाग, सिन्दूरा, खमाज, पीलू, बागेश्री इत्यादि हैं, वीर रस के मालकौंश, शंकरा आदि हैं, शान्त रस के राग केदार, श्री, भूपाली आदि हैं तथा करूण रस के तोड़ी, भैरवी, यमन, कालिंगड़ा आदि हैं।

(3) राग निर्वाचन के बाद उस का मुख्य स्वरूप ध्यान में रखना चाहिए।

(4) राग में कुछ विशेष स्वर होते हैं जिससे राग प्रारम्भ तथा समाप्त किया जाता है। ऐसे स्वरों को ग्रह और न्यास स्वर कहते हैं। आजकल इन स्वरों पर ध्यान नहीं दिया जाता, परन्तु कुछ राग ऐसे हैं जिनमें कुछ खास स्वरों पर ही अधिकतर न्यास किया जाता है।

(5) स्थाई तथा अन्तरा राग के अलग—अलग उठाव और चलन होते हैं जिसका ध्यान रखना आवश्यक है।

(6) गीत रचना में राग के ऐसे स्वरों का चुनाव होना चाहिए जिससे काव्य का भाव स्पष्ट हो सके।

(7) ताल — गीत रचना ऐसी ताल में करनी चाहिए जिससे राग और काव्य का रस स्पष्ट हो जाए।

(8) ताल के आघातों(विभागों) का गीत के शब्दों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि गीत के उचित स्थानों पर ताल के आघात(ताली और खाली) नहीं पड़ती तो उसमें रसानुभूति नहीं हो सकती।

(9) अन्त में काव्य तथा राग में विश्रान्ति स्थानों का ध्यान रखना आवश्यक है क्योंकि राग में विश्रान्ति स्थानों से अर्थ तथा भाव स्पष्ट होते हैं।

3.11 गन्धर्व व गान

संगीत की परम्परा भारत में पुरातन है। संगीत कला का मुख्य उद्‌देश्य आनन्द की प्राप्ति है। आरम्भ में संगीतकला कला के रूप में नहीं थी, बल्कि इस रूप में आने से पहले इसका एक लम्बा युग था। संगीत के आदि ग्रंथ वेद माने जाते हैं। वेदों की ऋचाएं जिनको आर्थिक, गाथिक और सामि कहा जाता था, उनके नियमों के अनुसार ही संगीत का प्रसार किया जाता था। संगीत के इतिहास से पता चलता है कि आरम्भ से ही दो धाराएं समानान्तर रूप में चलती रहीं।

1. वैदिक संगीत 2. लौकिक संगीत

वैदिक संगीत के अन्तर्गत उसकी ऋचाओं को विशेष नियमबद्ध ढंग से गाया जाता था, जबकि लौकिक संगीत में मनुष्य अपनी रूचि के अनुसार परिवर्तन कर सकता था। यहां यह स्पष्ट करना जरूरी है कि संगीत शब्द का प्रयोग उस समय नहीं किया जाता था। उस समय गीत शब्द कहा जाता था। गीत से भाव स्वर और लयबद्ध रचना से था। गीत के दो भेद माने गए।

1. गन्धर्व 2. गान

<u>गन्धर्व</u> – इस गीत को गान्धर्व लोग गायन करते थे, इसलिए इसका नाम गन्धर्व पड़ गया। इसका मुख्य उद्‌देश्य मोक्ष–प्राप्ति था। प्राचीन गन्धर्व गायन को मार्गी संगीत भी कहा जाए तो निराधार नहीं होगा। इसकी पुष्टि पं. शारंगदेव और दामोदर ने अपने–अपने ग्रंथों में की है। इन दोनों धाराओं का मुख्य उद्‌देश्य मोक्ष–प्राप्ति था। इसलिए यह कहा जा सकता है कि वैदिक गान से ही गन्धर्व संगीत की उत्पत्ति हुई। वैदिक युग के अन्त में गान्धर्व संगीत अप्रचलित हो गया इसलिए उसके मूल रूप के बारे में स्पष्ट करना सम्भव नहीं है।

<u>गान</u> – जो संगीत, संगीताचार्य और संगीतकारों ने अपनी बुद्धि से और विशेष कलात्मकता से लोकरूचि अनुसार पेश किया, उसको गान कहा गया। शारंगदेव ने ऐसे संगीत को देशी संगीत कहा। देशी संगीत की परिभाषा देते हुए पं. शारंगदेव ने कहा है कि भिन्न–भिन्न देशों में जनरूचि के अनुसार मनुष्य इसको गा–बजाकर या नृत्य करके अपने ह्रदय का मनोरंजन करता है, उसको देशी संगीत कहा जाता है। इसी प्रकार पं. दामोदर ने भी कहा है कि वह संगीत, जो देश के भिन्न–भिन्न भागों में, वहां के रिती–रिवाजों के अनुसार जनता का मनोरंजन करे, उसको देशी संगीत कहा जाता है। उपर्युक्त कथन से यही कहा जा सकता है कि संगीत की जिस धारा को संगीतकारों और संगीतचार्यों ने जनरूचि के अनुसार समय–समय पर इसमें परिवर्तन करके पेश किया, उसे गान संगीत कहा गया। असल में गान को ही देशी संगीत कहा गया। देशी संगीत के दो मुख्य भेद निबद्ध और अनिबद्ध भरत, मतंग और शारंगदेव ने भी माने हैं।

3.12 तिरोभाव–अविर्भाव

भारतीय शास्त्रीय संगीत में राग अमूल्य देन है। राग का मूल उद्‌देय रंजकता उत्पन्न करना है। संगीत में रंजकता उसको कहा जाता है जो आत्मिक आनंद दे। राग को प्रस्तुत करते समय राग में स्वरों का उचित लगाव, राग का उचित स्वरूप वादी, संवादी और विशेष नियमों का प्रयोग करते समय विभिन्न सांगीतिक क्रियाओं से राग की सुन्दरता का तत्व उभारा जाता है। राग में अविर्भाव और तिरोभाव की क्रियाओं से राग की सुन्दरता और रंजकता का संचार किया जाता है। कलाकार राग का विस्तार करते समय कुछ देर में मूल राग के स्वरूप को छुपा देता है। जिससे श्रोताओं को दूसरे राग की झलक लगने लगती है, ऐसी क्रिया को राग का तिरोभाव कहा जाता है। परन्तु जब फिर वापिस मूल राग के स्वरूप को स्पष्ट किया जाता है तब उसको अविर्भाव कहा जाता है। राग में तिरोभाव–आविर्भाव की क्रिया कुशल संगीतकार ही कर सकते हैं। इसी क्रिया को यदि उचित ढंग से न किया जाए तब राग की हानि हो सकती है। इसलिए इस क्रिया को करने से पहले निम्न विशेष तत्वों की तरफ ध्यान देना जरूरी है:

1. यह क्रिया केवल उस समय ही करनी चाहिए जब राग का स्वरूप पूरी तरह कायम हो गया हो अर्थात् जब श्रोताओं को पूर्ण रूप से राग की पहचान हो जाए।
2. यह क्रिया अधिकतर समप्रकृतिक राग द्वारा ही पेश करनी चाहिए।
3. यह क्रिया बहुत थोड़े समय के लिए होनी चाहिए नहीं तो मूल राग की हानि हो सकती है।

4. यह क्रिया करने से राग को कोई नुकसान नहीं होगा परन्तु अनुचित ढंग से करने से राग को हानि हो सकती है।

आविर्भाव का अर्थ है राग में मूल स्वरूप को प्रकट रूप में दिखलाना और तिरोभाव का अर्थ है कि किसी अन्य राग की छाया दिखला कर राग के स्वरूप को कुछ समय के लिए आच्छादित कर देना। यह प्रक्रिया वैचित्र्य उत्पन्न करने के लिए की जाती है, अतः सीमित समय के लिए ही प्रक्रिया को किया जाना चाहिए। अधिक देर तक तिरोभाव करने से मूल राग अपना प्रभाव खो सकता है। तिरोभाव के बाद पुनः जब मूल राग में आया जाता है, उसे आविर्भाव कहते हैं। तिरोभाव दो प्रकार से किया जाता हैः– (1) सम–प्रकृति राग की छाया दिखला कर (2) मूर्च्छना–भेद से आधार स्वर को परिवर्तित करके।

1. **सम–प्रकृति राग की छाया दिखलाकर** – किसी राग को गाते–बजाते समय जब राग का प्रभाव पूरी तरह से छा जाता है तब उस राग से मिलते–जुलते किसी अन्य राग के समान स्वर–समूह जो रागों में समान रूप से आते हों ऐसे स्वर समूहों को गायक या वादक वैचित्र उत्पन्न करने के लिए प्रयोग करता है, इससे मूल राग कुछ समय के लिए छिप जाता है, इस छिपन की क्रिया को तिरोभाव कहते हैं। जैसे मूल राग यदि भैरवी गाया या बजाया जा रहा हो तो निम्न प्रकार से होगा – सा रे सा, ग ऽ सा रे सा, धनि सा रे सा, सा रेग म, ग म गमपम ग म रे सा।

तिरोभाव – नि सा, ग म प, म प ग म निसाग सागम ग म प, म प ग म ग यहाँ तक भैरवी भी है और भीमपलासी भी है, अतः भैरवी में भीमपलासी का तिरोभाव होगा पर इस प्रक्रिया में वे स्वर–समूह नहीं लिए जा सकते जो केवल भीमपलासी के हों। जैसे 'म ग रे सा', क्योंकि से स्वर भैरवी के नहीं हैं अतः तिरोभाव करते समय इन स्वरों का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

आविर्भाव –सारे सा, सा रेग म, प ध प म, ग म रे सा।

उत्तरांग में भैरवी में ही मालकौंस का तिरोभाव – ग म धनि सां, ध निध सां, सा ध म धनि सां, नि सा ग म ध नि सां, ग म ध म नि सां ऽ गं, यहाँ तक मालकौंस के स्वर–समूह हुए और साथ ही भैरवी के भी हैं, अतः कुछ समय के लिए भैरवी छिप गया है और मालकौंस उभर रहा है। यहाँ भी स्वर–समूह नहीं लगाए जा सकते हैं जो केवल मालकौंस के हों। जैसेः– 'मंगंसां' या 'सां धनिध म' ये स्वर–समूह भैरवी के नहीं हैं अतः तिरोभाव करते समय इन स्वरावलियों का प्रयोग नहीं कर सकते। आर्विभाव – सां रें सां, सां निध प ध प म, प म ग, सारेग म प, ग म रे सा।

यह तिरोभाव समान स्वरों वाले यानी किसी एक थाट के रागों में भी किया जा सकता है। जैसे कल्याण थाट के दोनों मध्यम वाले अधिकांश रागों के पूर्वांग में तो भिन्नता है पर उत्तरांग में समान स्वर–समूहों का प्रयोग होता है। जैसे–कामोद, छायानट, गौड़–सारंग, हमीर। इनमें 'प ध मं प सां, सां ध प, मं प ध प नि ध सां, सां रें सां,' इन स्वरावलियों के प्रयोग से कल्याण–थाट के दोनों मध्यम वाले राग ही रहेंगे। अतः किसी भी राग में ऐसे स्वर–समूहों के प्रयोग से मिलते जुलते राग की छाया दिखला कर तिरोभाव किया जा सकता है। कुछ समय के बाद पुनः मूल राग जो गाया जा रहा हो उस राग विशेष के स्वर लगा कर आर्विभाव करना होगा।

श्यामकल्याण व कामोद का अवरोह समान होने के कारण जब केवल अवरोह क्रम के स्वर समूहों का प्रयोग किया जाए तो दोनों राग होंगे अतः इन दोनों रागों में एक–दूसरे का तिरोभाव किया जा सकता है। कुछ समय के बाद आरोह–क्रम के स्वर लगा कर अभीष्ट राग में आने की क्रिया को आविर्भाव कहा जाएगा।

2. **मूर्च्छना–भेद से आधार–स्वर परिवर्तित करके** – मूल रूप से आधार स्वर षड्ज होता है, पर जब षड्ज के अतिरिक्त कुछ समय के लिए किसी अन्य स्वर को आधार स्वर यानी षड्ज मान लिया जाए तो मूल राग छिप जाएगा और उसके स्थान पर दूसरा राग दिखलाई देने लगेगा। जैसे कोमल–धैवत वाले ललित राग को गाते–बजाते समय यदि मध्यम को कुछ समय के लिए षड्ज मान लें तो ललित के स्वरों में तोड़ी राग दिखने लगेगा। जैसेः–

ललित – म मं म, ध ऽ मं म, नि ध नि मं ध मं मं

तोड़ी – सा<u>रे</u> सा, <u>ग</u> ऽ <u>रे</u> ग <u>रे</u> सा, मं <u>ग</u>, मं <u>रेगरे</u> सा

यदि स्थिति चन्द्रकौंस गाते–बजाते समय होती है और यदि मध्यम को षड्ज मान लें तो मधुकौंस हो जाएगा। जैसेः–

चन्द्रकौंस – म <u>ग</u> म <u>ध</u> म, <u>ग</u> म <u>ध</u> नि सां, सां नि सां <u>ध</u> नि सां, सां <u>गं</u> सां
मधुकौंस – सा<u>नि</u> सा <u>ग</u> सा, <u>नि</u> सा <u>ग</u> मं प, प मं <u>प</u> ग मं प, प <u>नि</u> प
चन्द्रकौंस – नि <u>ध</u> म <u>ग</u> म, <u>ध</u> नि सां नि सां
मधुकौंस – मं <u>ग</u> सा, <u>नि</u> सा <u>ग</u> मं प मं प

पाँच स्वरों वाले औडुव–जाति के रागों में यह क्रिया और भी आसान है। मालकौंस के षड्ज को आधार–स्वर मानने से मालकौंस, कोमल–गांधार को षड्ज मानने से बिलावल–थाट का दुर्गा, मध्यम को आधार मानने से धानी, कोमल धैवत को षड्ज मानने से भूपाली और कोमल–निषाद को आधार–स्वर मानने से मधुमाद–सारंग के स्वरान्तर प्राप्त होंगे। अतः मालकौंस में इन चारों रागों का तिरोभाव किया जा सकता है या उपरोक्त पाँचों रागों में एक–दूसरे का तिरोभाव किया जा सकता है।

मूर्च्छना–भेद से तिरोभाव करने से रागों के विस्तार की पर्याप्त जानकारी हो जाती है क्योंकि सभी रागों की तानें एक–दूसरे राग में प्रयोग करने की नई दृष्टि आ जाती है। समर्थ कलाकार इस रीति से आधार–स्वर बदल–बदल कर कोई भी राग अधिक समय गाते बजाते देखे जाते हैं। बड़े गुलाम अली खाँ साहब तो मूर्च्छना–भेद से आधार–स्वर परिवर्तित करके अविर्भाव–तिरोभाव की रीति का ही अधिक प्रयोग करते थे।

3.13 काकु

काकु का अर्थ है ध्वनि के उतार–चढ़ाव से भाव व्यक्त करना। संगीत में सभी स्वर आधार स्वर से ऊँचे या नीचे होने पर बनते हैं जिनसे संगीत निर्मित होता है। काकु से स्वरों का उतार–चढ़ाव या स्वरों का ऊँचा–नीचापन प्रदर्शित होता है इसलिए काकु को संगीत की जननी कहा जाता है। समान शब्द होने पर भी यदि ध्वनि, भाव के अनुसार ऊँची या नीची कर दी जाए तो भाव में अन्तर आ जाता है। इसके अतिरिक्त यदि शब्दों के ठहराव में अन्तर कर दिया जाए तो भी अर्थ परिवर्तित हो जाता है। अर्ध–विराम से निम्नलिखित वाक्य का अर्थ ही विपरित हो गया है 'उसे रोको' मत आने दो', अब यहाँ रोको के बाद का अर्थ विराम 'मत' के पश्चात लगाने से अर्थ एकदम विपरित हो जाता है–'उसे रोको मत, आने दो'। इन दोनों वाक्यों में समान शब्द हैं केवल अर्धविराम के स्थान भेद से अर्थ परिवर्तित हो गया।

अब काकु पर विचार करें। प्रश्नवाचक वाक्य में स्वर नीचे से ऊपर होता है जैसे यदि यह पूछना हो कि 'वह क्या है?' तो ध्वनि मध्य–षड्ज से पंचम तक उठती है इसके विपरित जब उत्तर देना हो ध्वनि मध्य–षड्ज से नीचे पंचम तक जाती है। कहने का भाव यह है कि यदि लिखा हुआ न हो केवल कहना हो तो समान वाक्य होते हुए केवल मध्य–षड्ज से मध्य–पंचम तक ध्वनि जाए तो उत्तर लगता है। यही काकु का प्रयोग है। काकु का क्षेत्र विशाल है। शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर(भाग–2, पृ.–175) में छह प्रकार के काकुओं का उल्लेख किया है जैसे स्वर काकु, राग काकु, अन्य–राग काकु, देश काकु, क्षेत्र काकु और यन्त्र काकु।

इसके अतिरिक्त भाव व्यक्त करने के लिए कभी किसी शब्द पर दबाव देने के लिए ज़ोर देना होता है। कभी कोमल भावनाओं को प्रदर्शित या व्यक्त करने के लिए ध्वनि को अपेक्षाकृत मुलायम बनाना होता है। इन दोनों प्रकारों का साहित्य और संगीत दोनों में एक समान रूप से प्रयोग किया जाता है। जैसे साहित्य में डराने के भाव को कठोर शब्दों से, वैसे ही संगीत में स्वर को बुलन्द करके या वाद्य में जोरदार प्रहार करके प्रदर्शित करते हैं। मधुरता के लिए कोमल भाव से शब्दों या स्वरों की सहायता से काकु के सहारे भाव व्यक्त किए जाते हैं।

3.14 तान

तान शब्द का अर्थ है बढ़ाना या फैलाना। दूसरे अर्थों में इसको विस्तार भी कहा जा सकता है क्योंकि इसके द्वारा राग वाचक स्वर समूहों का द्रुत लय में अखंडित रुप में उच्चारण किया जाता है। किसी भी राग में तान उच्चारण करने के लिए उस राग के वादी–संवादी, आरोह–अवरोह और वर्जित स्वर, राग का विशेष चलन आदि की तरफ विशेष ध्यान रखना पड़ता है। इन तत्वों का ध्यान तो आलाप बंदिश में भी रखना पड़ता है परन्तु तानों में विशेष नियमों का पालन करते हुए विभिन्न लयकारियां, जिससे सुन्दरता, विचित्रता आदि पैदा होती है, का विशेष महत्व दिखलाया जाता है।

तानों का प्रयोग ख्याल, टप्पा, ठुमरी आदि गायन–शैलियों में ही किया जाता है। ध्रुपद में तानों का प्रयोग नहीं किया जाता। ध्रुपद के तीसरे और चौथे चरण में नोम–तोम के आलाप में केवल गमक तान का ही प्रयोग किया जाता है और तानों का प्रयोग ध्रुपद में नहीं होता।

<u>तानों के प्रकार</u> – तानों के अनेक प्रकार हैं जैसे–अलंकारिक तान, गमक तान, कूट तान, मिश्र तान, छूट तान, जबड़े की तान, फिरत तान, दानेदार तान, हलक तान, झटके की तान, खटके की तान, बोल तान, सपाट तान, टप्पे अंग की तान, मूर्छना की तान, चक्की तान, तलवार की तान, उखाड़–पछाड़ की तान, लड़त तान, पलट तान, सरगम तान, अचरक तान, वक्र तान, सरोक तान आदि।

<u>तान रचना विधि</u> – आरंभिक विद्यार्थी को पहले गुरु के द्वारा सिखाई साधारण तानों का ही प्रयोग करना चाहिए। परन्तु धीरे–धीरे विद्यार्थी को राग के विशेष चलन, तानों के उचित नियमों के प्रयोग के बारे में जानकारी हो जाती है तो वह तानों की रचना स्वयं भी कर सकता है। तानों में लयकारी का विशेष महत्व है।

<u>उत्तम तानों के सिद्धांत</u> – आरंभिक विद्यार्थी को पहले चार वर्णो(स्थाई वर्ण, आरोही वर्ण, अवरोही वर्ण, संचारी वर्ण) के अलंकारों का अभ्यास होना चाहिए ताकि विद्यार्थी का गला स्वरों के उचित स्थान के उच्चारण में पक्का हो सके। इन अलंकारों को पहले ठाह लय में, फिर दुगुन और चौगुन, अठगुन लय में करवाया जाए।

आरंभ में केवल छोटी–छोटी तानों का ही अभ्यास कराया जाए। बाद में बड़ी तानें विद्यार्थी अपने आप गाने में समर्थ हो जाता है। तान का अभ्यास पहले कम लय में किया जाए ताकि स्वरों और क्रियाओं का उचित प्रयोग हो सके। तानों की संख्या तब ही बढ़ाई जाए जब पहली तानों पर पूरा अभ्यास हो जाए। अभ्यास के लिए अर्थात् गले की विशेष हरकत के लिए सपाट तान का अपना अलग ही योगदान होता है। अवरोहात्मक क्रम में सपाट स्वरों का उच्चारण मुश्किल लगता है क्योंकि इस क्रम में कंठ पर काबू तब ही हो सकता है जब स्वरों का पूर्ण ज्ञान हो। ऐसी तानों में लयकारी धीरे–धीरे बढ़ानी चाहिए और साथ ही साथ सपाट स्वरों का अभ्यास मध्य षड्ज से लेकर तार सां तक न किया जाए बल्कि पहले सा से लेकर म तक एक पड़ाव देकर अभ्यास करने के बाद तार षड्ज तक पहुंचा जाए।

तान का अभ्यास करते समय षड्ज या राग में लगने वाले विशेष आरंभिक स्वर जैसे कल्याण में नि आदि से न किया जाए बल्कि ऋषभ से लेकर तार सप्तक के ऋषभ तक, गंधार से लेकर तार सप्तक के गंधार तक इत्यादि तानों का अभ्यास किया जाए, जिससे विद्यार्थी को स्वरों का बहुत पक्का अभ्यास हो जाएगा। इससे उसको किसी भी स्वर को सा मानकर गाने का अभ्यास हो जाएगा। मूर्च्छना पद्धति में भी ऐसा होता है। जब विद्यार्थी किसी भी स्वर को सा मानकर आरोह–अवरोह करेगा तब स्वरों के स्थानों में अंतर आना स्वाभाविक है। चाहे उसने उच्चारण तो सा रे ग म प ध नि आदि का ही किया है परन्तु हर बार षड्ज बदलने से मूल स्वर समूह में अंतर आ जाएगा। जिससे विभिन्न स्वरों के उच्चारण में फिर कोई मुश्किल नहीं आएगी।

आरंभ में ऐसे रागों की तानें करवानी चाहिए जिनमें शुद्ध स्वर प्रयोग हो, जिनका चलन सरल और सीधा हो और जिनमें संवाद ज्यादा हो। जैसे कल्याण राग इत्यादि इसमें तीव्र मध्यम के अलावा बाकी सभी स्वर शुद्ध लगते हैं और इसका चलन भी सीधा है। ऐसे रागों में तानों की तैयारी के बाद फिर किसी और राग की तानें की जाए। पहले वक्र जाति वाली रागों की तानों की तैयारी न की जाए। पहले औड़व जाति के सरल रागों की तानें जैसे भूपाली, देशकार इत्यादि रागों में ही उच्चारी जाए क्योंकि शुद्ध स्वरों पर काबू के बाद ही कोमल स्वर उच्चारण में सफलता मिलेगी।

बोल तानों को गाने के लिए पहले बंदिश के बोलों का अभ्यास सरगम पर ही किया जाए बाद में बंदिश के बोलों की तान अर्थात् बोलतान या आकार के द्वारा तान का अभ्यास किया जाए।

आदत, जिगर, हिसाब वैसे तो इन तीनों का प्रयोग संगीत के हर पहलू में रहता है परन्तु तानों में इस संबंध में विशेष चौकन्ने रहना पड़ता है। जैसे विशेष लयकारी के लिए उत्तम अभ्यास अर्थात् आदत, स्वरों और क्रियाओं का उचित प्रयोग अर्थात् जिगर और मात्राओं की विशेष गिनती अर्थात् हिसाब। उत्तम तानों के लिए गायक के विशेष गुण जैसे–बैठने का उचित ढंग, जिससे फेफड़ों में कोई रुकावट न हो और चेहरे पर भाव पेश करने का ढंग आदि होना भी आवश्यक है। स्वर, लय और ताल की विशेष जानकारी आत्मविश्वास आदि तत्वों का ध्यान रखना जरुरी है क्योंकि ऐसे तत्वों के बिना तानों का उचित रुप से उच्चारण नहीं किया जा सकता, जिसके फलस्वरुप गायक अपने गायन से इसकी उत्पत्ति करने में असमर्थ हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न

क. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. मार्गी संगीत के विषय में संक्षेप में व्याख्या कीजिए।
2. वाग्गेयकार के गुणों का वर्णन संक्षेप में कीजिए।
3. भारतीय संगीत में काकु से आप क्या समझते हो? संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4. रागों के चलन में तिरोभाव एवं आविर्भाव का क्या महत्व है?बताइए।

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1. गान लोक रूचि के अनुसार न होकर मोक्ष प्राप्ति का साधन था।
2. देशी संगीत का मूल उद्देश्य लोकरंजनकारी रहा है।
3. संगीत रत्नाकर में 6 प्रकार के काकुओं का वर्णन मिलता है।
4. तिरोभाव की क्रिया समप्रकृति रागों को छोड़ अन्य रागों में की जाती है।

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1. ध्रुपद गायन में स्वरों को आन्दोलित करते हुए _______तानों का प्रयोग होता है।
2. निबद्ध गान में वे संगीतमयी रचनाएं आती है जो ________बद्ध होती हैं।
3. मो0 करम इमाम ने अपने ग्रंथ में नायकों की संख्या_________मानी है।
4. मार्गी संगीत का मुख्य उद्देश्य _________प्राप्ति रहा है।

3.15 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप भारतीय संगीत के सैद्धान्तिक पक्षों जैसे मार्गी संगीत, देशी संगीत, गन्धर्व, गान, वाग्गेयकार, पण्डित, कलावन्त, नायक, गायक, गीत, तिरोभाव, अविर्भाव, काकु और तान के बारे में जान चुके होंगे। संगीत एवं धर्म का आरम्भ से ही अटूट सम्बन्ध रहा है। संगीत की दो धाराओं मोक्ष प्राप्ति एवं लोक मनोरंजनकारी क्रमशः मार्गी एवं देशी संगीत के रूप में कालान्तर से भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग के रूप में प्रचलन में रही हैं। मार्गी संगीत की तुलना पहाड़ी देशों में उन्मुक्त रूप से बहते हुए झरनों से की जा सकती है। भारतीय शास्त्रीय संगीत की परम्परा का निर्वाह करते हुए गायक, नायक, वाग्गेयकार, पंडित, कलावन्त आदि ने प्रत्येक काल में इस कला को समृद्ध करते हुए अपनी विशेष भूमिका का निर्वहन किया है। इनमें वाग्गेयकार सम्पूर्ण रूप से कला निष्णात होते रहे हैं।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में राग एक अमूल्य देन है। राग का मूल उद्देश्य रंजकता उत्पन्न करना है। रंजकता वह है जो आध्यात्मिक आनन्द प्रदान करे। राग में आलाप–ताल एवं आविर्भाव तथा तिरोभाव के प्रयोग एवं क्रियाओं द्वारा राग की सुन्दरता और रंजकता का संचार किया जाता है। ताल द्वारा राग में एक चमत्कार उत्पन्न भी होता है। वर्तमान में राग में आविर्भाव व तिरोभाव एक अनिवार्य क्रिया बनती जा रही है तथा आलाप प्रधान संगीत ताल प्रधान संगीत के रूप में विकसित होता जा रहा है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि जन रूचि परिवर्तित हो गई है। समय के साथ संगीत के विभिन्न पक्षों में बदलाव आया तथा गायकी परिवर्तित होती गई।

3.16 शब्दावली

1. **श्रुति** – कानों से सुनी जा सकने वाली सूक्ष्म ध्वनि।
2. **मूर्च्छना** – सप्तक में क्रमानुसार पॉच, छः या सात स्वरों का विशेष क्रमयुक्त प्रयोग मूर्च्छना कहलाता है।
3. **गमक** – आन्दोलित बलयुक्त स्वर का प्रयोग।
4. **जाति गान** – ध्रुपद व प्रबन्ध गायन के पूर्व एक प्राचीन गान प्रकार।
5. **ग्रह एवं अंश स्वर** – संगीत रचना का सबसे प्रारम्भिक स्वर ग्रह स्वर है तथा इसके पश्चात महत्वपूर्ण स्वर अंश स्वर है।
6. **खटका** – किसी स्वर को पास वाले दूसरे स्वर से अल्प स्पर्श यदि जोरदार विधि से हो तो वह खटका कहलाता है।
7. **मुर्की** – स्वरों का छोटा सा समूह जिससे तेज गति से लिया जाता है उसे मुर्की कहते हैं।
8. **अलंकार** – स्वरों का ऐसा समूह जो गीत को रंजकता प्रदान करता है।
9. **आलाप** – स्वरों द्वारा आकार में विस्तार करना जिससे राग का विस्तार होता है।

3.17 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1. गमक 2. ताल 3. 12 4. मोक्ष

3.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कौर, डॉ0 भगवन्त, *परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धान्तिक संगीत*, कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
2. सर्राफ, डॉ0 रमा, (2004), *भारतीय संगीत सरिता*, कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
3. परांजपे, डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर, (1992), संगीत बोध, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
4. राजन, डा0 रेणु, (2010) भारतीय शास्त्रीय संगीत के विविध आयाम, अंकित पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
5. भातखण्डे, विष्णु नारायण, (1966), उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, संगीत कार्यालय, हाथरस।

3.19 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. गर्ग, लक्ष्मी नारायण, बसन्त(1997), संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. गोबर्धन, शान्ति, (1989), संगीत शास्त्र दर्पण भाग–2, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
3. पाठक, पं0 जगदीश नारायण, (1995), संगीत शास्त्र प्रवीण, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

3.20 निबन्धात्मक प्रश्न

1. रागों में आविर्भाव व तिरोभाव के प्रयोग के महत्व को समझाते हुए विस्तार से व्याख्या कीजिए।
2. मार्गी एवं देशी संगीत की व्याख्या करते हुए विस्तार पूर्वक इनकी विशेषताओं को समझाइए।

इकाई 4 – संगीतज्ञों (उ0 आबिद हुसैन, उ0 शेख दाउद उ0 लतीफ अहमद खां) का जीवन परिचय

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्‌देश्य
4.3 उ0 आबिद हुसैन
4.4 उ0 शेख दाउद
4.5 उ0 लतीफ अहमद खां
4.6 पं0 बीरू मिश्र
4.7 सारांश
4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम बी0ए0एम0टी0(एन)–301 की चौथी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों में आप भारतीय संगीत के मध्यकाल के इतिहास, प्राचीन, मध्य एवं आधुनिक काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्ध वाद्यों एवं संगीत के विभिन्न महत्वपूर्ण शब्दों मार्गी संगीत, देशी संगीत, नायक, गायक आदि के विषय में जान गए होंगे।

भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रचार व प्रसार में अनेक संगीतज्ञों का हाथ है। प्रस्तुत इकाई में कुछ प्रसिद्ध तबला वादकों के जीवन पर प्रकाश डाला जाएगा। भारतीय संगीत के क्षेत्र में उनकी गहन साधना और उनके विचारों को भी सविस्तार बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप महान संगीतज्ञों (तबला वादकों) के महत्वपूर्ण योगदान को समझ सकेंगे तथा यह भी जान पाएंगे कि एक आम आदमी से एक संगीतज्ञ बनने का सफर कितना कठिन है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :–

1. तबला वादकों के जीवन वृत से परिचित होंगे।
2. तबला वादकों के जीवन परिचय से प्रेरणा ले सकेंगे।
3. तबला वादकों द्वारा दिखाए गए धैर्य, निष्ठा तथा कठिन परिश्रम के लिए प्रेरित होंगे।

4.3 उ0 आबिद हुसैन

<u>जन्म</u> – उ0 आबिद हुसैन का जन्म लखनऊ में सन् 1867 को हुआ।

<u>परिवार, संगीत शिक्षा एवं संगीत यात्रा</u> – उ0 आबिद हुसैन का सम्बन्ध लखनऊ घराने से है तथा आप खलीफा आबिद हुसैन के नाम से प्रसिद्ध हुए। उ0 आबिद हुसैन, उ0 मोहम्मद खां के पुत्र थे। मोहम्मद खां, उ0 मम्मन खां उर्फ मम्मू खां के पुत्र तथा बख्शू खां के पौत्र थे। उ0 मोहम्मद खां की मृत्यु अल्प आयु में हो गई थी। उ0 मोहम्मद खां के दुसरे पुत्र उ0 मुन्ने खां थे जो उ0 आबिद हुसैन से बडे थे, अतः उ0 आबिद हुसैन के पिता उ0 मोहम्मद खां की मृत्यु के पश्चात उ0 आबिद हुसैन की तबले की शिक्षा अपने बडे भाई मुन्ने खां से हुई। मुन्ने खां नवाज वाजिद अली शाह के दरबार में नियुक्त थे तथा वहां पर कत्थक नृत्य सम्राट महाराज कालिका प्रसाद तथा महाराज बिन्दादीन के साथ नृत्य की संगति किया करते थे। उ0 आबिद हुसैन प्रतिभा के धनी तथा परिश्रमी थे। इनके तबला वादन में एक विशेष प्रकार का आर्कषण था। लखनऊ बाज को नचकरन बाज भी कहा जाता है। जिसमें नृत्य के साथ संगति हेतु लखनऊ बाज से रचनाएं की गई थी। नचकरन बाज के नाम से लखनऊ बाज, उ0 आबिद हुसैन के समय में ही प्रचलित हुआ जिसका मुख्य श्रेय इनके बड़े भाई उ0 मुन्ने खां को जाता है। लखनऊ में मैरिस म्युजिक कालेज की स्थापना हुई जिसमें उ0 आबिद हुसैन खां को तबला विभाग की जिम्मेदारी सौंपी गई। बाद में मैरिस कॉलेज का नाम बदल कर भातखण्डे संगीत महाविद्यालय हो गया जो कि वर्तमान में भी इसी नाम से जाना जाता है। संगीत शिक्षा हेतु भारत वर्ष का यह प्रतिष्ठित संस्थान है। वर्तमान भातखण्डे संगीत महाविद्यालय को समविश्वविद्यालय का दर्जा प्राप्त है। उ0 आबिद हुसैन ने लखनऊ बाज को बहुत समृद्ध किया तथा कहा जाता है कि लाल किला परन की रचना उ0 आबिद हुसैन ने ही की थी।

<u>शिष्य परम्परा</u> – उ0 वाजिद हुसैन, उ0 आबिद हुसैन के दामाद, भतीजे व शिष्य थे तथा इनके द्वारा ही मुख्य रूप से उ0 आबिद हुसैन की परम्परा को आगे बढ़ाया गया। इसके अतिरिक्त इनके प्रमुख शिष्यों में बनारस के पं. बीरू मिश्र, देवी प्रसन्ना घोष, मेहंदी हुसैन खां, अली कादिर खां, हिरेन्द्र किशोर राय चौधरी, राजीव लोचन डे, वासुदेव प्रसाद, शेर खां, अजीम बख्श(बम्बई), जहांगीर खां(इन्दौर), चुन्नी लाल गांगुली, क्षितिज लहरी, शिशिर भूषण भट्टाचार्य, उमेश दास, राय बहादुर, केशव दास बनर्जी, सुघान

खां(ढाका), हीरेन्द्र कुमार गांगुली, गंगा प्रसाद रहे। इनकी परम्परा में आफाक हुसैन के पुत्र उ0 इल्मास खां लखनऊ में तबला की शिक्षा देकर परम्परा का निर्वाह कर रहे हैं।

मोहम्मद खां

↓

आबिद हुसैन(पुत्र)

↓

उस्ताद वाजिद हुसैन (भजीता, दमाद)

<u>मृत्यु</u> – उ0 आबिद हुसैन की मृत्यु लखनऊ में सन् 1936 मे हुई।

4.4 उ0 शेख दाउद

<u>जन्म</u> – उ0 शेख दाउद का जन्म शोलापुर (महाराष्ट्र) में 1916 में हुआ।

<u>परिवार, संगीत शिक्षा एवं संगीत यात्रा</u> – आपके पिता हासिम साहिब पी0डब्लू0डी0 में ड्राफ्टमैन थे। इनका सम्बन्ध संगीत के परिवार से नहीं था। ऐसे परिवार में जन्म लेने के बावजूद उ0 शेख दाउद ने अपने समय के खानदानी तबला वादकों में अपना विशेष एवं सम्मानजनक स्थान बनाया था। गायक उ0 अब्दुल करीम खां(किराना), शेख दाउद के पिता हासिम साहिब के अच्छे मित्र थे तथा शेख दाउद की संगीत में रूचि देखकर हासिम साहिब उनको उ0 अब्दुल करीम खां के पास ले जाने लगे। इस प्रकार संगीत तथा तबले की प्रारम्भिक शिक्षा उ0 अब्दुल करीम खां से हुई। शोलापुर के जमींदार मोहम्मद कासिम को तबला वादन की शिक्षा प्राप्त थी अतः उन्होंने उ0 शेख दाउद को तबला वादन की विधिवत शिक्षा देनी आरम्भ की।

उ0 शेख दाउद को 1936 में हैदराबाद के रेडियो स्टेशन में तबला वादन के लिए आमंत्रित किया गया। इसके बाद 1939 में वे हैदराबाद में ही बस गए जहां पर इन्होंने हैदराबाद रेडियो स्टेशन में स्टाफ कलाकार के रूप में नौकरी की।

हैदराबाद में देहली घराने के उ0 बोली बख्श के भतीजे उ0 अलादियां खां थे। अतः शेख दाउद उ0 अलादिया खां के शिष्य हो गए। उ0 शेख दाउद को उ0 अलादिया के पिता उ0 बोली बख्श से भी सीखने का अवसर मिलता रहा। इस प्रकार शेख दाउद को देहली बाज की शिक्षा प्राप्त हुई। उ0 अल्लादिया खां की मृत्यु के पश्चात् उ0 शेख दाउद ने उ0 अल्लादिया खां के पुत्र छोटे खां, मोहम्मद खां से तबला वादन की शिक्षा ली।

उ. शेख दाउद ने लखनऊ घराने के उ0 जहांगीर खां, जो कि उस्ताद आबिद हुसैन के शिष्य थे, का भी शिष्यत्व ग्रहण किया। आपको इस प्रकार लखनऊ घराने की वादन शैली की शिक्षा भी प्राप्त हुई। उस्ताद महबूब खां मिरजकर, उस्ताद जहांगीर के शिष्य थे तथा शेख दाउद के मित्र थे परन्तु कुछ खास बन्दिशों के लिए उस्ताद शेख दाउद, उस्ताद महबूब खां मिरजकर के भी शिष्य हो गए थे जो कि शेख दाउद के तबला के प्रति विशेष प्रेम को दर्शाता है। उस्ताद जहांगीर खां ने हाजी विलायत अली के प्रसिद्ध शिष्य मुबारक अली तथा उस्ताद खां(बरेली) से तबला वादन की शिक्षा ली थी। हाजी विलायत अली फरूखाबाद घराने के संस्थापक थे अतः उ0 शेख दाउद को उस्ताद जहांगीर खां एवं उस्ताद महबूब खां मिरजकर के माध्यम से फरूखाबाद घराने का तबला प्राप्त हुआ। मृदंगाचार्य नाना पानसे के शिष्य बामनराव चांदवडकर ने हैदराबाद में पखावज वादन की परम्परा को आगे बढ़ाया अतः उस्ताद शेख दाउद के पास नाना पानसे की रचनाओं का भी भण्डार था। इस प्रकार उस्ताद शेख दाउद की वादन शैली में देहली, लखनऊ, फरूखाबाद घराने का समावेश था जो कि वह अपने एकल वादन में एक गुलदस्ते के रूप में प्रस्तुत करते थे। उस्ताद शेख दाउद ने स्वयं तबले के टुकड़े, मुखड़े, तथा गतों की रचना की जिसमें उनके उस्तादों की झलक भी मिलती है।

उस्ताद शेख दाउद के एकल वादन में उनकी विद्वता का परिचय मिलता है। उस्ताद शेख दाउद ने आल इण्डिया रेडियो हैदराबाद में सन् 1954 में पन्द्रह दिन तक रोज आधा घण्टे का प्रदर्शन व्याखान किया था जिसमें उन्होंने प्रत्येक दिन नई ताल प्रस्तुत की थी। इन तालों में सात मात्रा से लेकर 21 मात्रा तक की तालें थी। उस्ताद शेख दाउद बड़े सरल व्यक्तित्व के थे तथा छोटे से छोटे कलाकार के साथ संगति करने में भी परहेज नहीं करते थे। देश के सभी प्रतिष्ठित संगीतज्ञों के साथ आपने तबला संगति की थी। इनमें कुछ कार्यक्रम जैसे सितार वादक उस्ताद विलायत खां के साथ बम्बई में पं0 रविशंकर द्वारा आयोजित कार्यक्रम में संगत, उस्ताद अब्दुल हलीम जाफर खां के साथ बम्बई में संगत, उस्ताद अली अकबर खां के साथ रेडियो के राष्ट्रीय कार्यक्रम में संगत अविस्मरणीय है। हैदराबाद में उस्ताद नजाकत अली–सलामत अली के साथ अति द्रुत एकताल के तराने के साथ संगत कर अपने श्रोताओं को आश्चर्य चकित कर दिया था। उ0 शेख दाउद को संगीत नाटक एकेडमी अवार्ड भी प्राप्त हुआ था।

तबले के अतिरिक्त आपको रागों का भी ज्ञान था। उ0 अब्दुल करीम खां के सानिध्य में रहने के कारण आपको गायन की बहुत सी रचनाएं भी याद थी।

<u>शिष्य परम्परा</u> – उ0 शेख दाउद के शिष्यों की एक लम्बी सूचि है। इनके पहले शिष्य हैदराबाद के नवाब जहीर जार जंग थे। उसके बाद शंकर(संगीत निर्देशक) जिनकी युगल जोड़ी शंकर–जयकिशन फिल्मी संगीत निर्देशक के नाम से मशहूर हुई थी। हैदराबाद के अतिरिक्त शेख दाउद के पास देहली, देहरादून, भोपाल आदि से तबला सीखने के लिए शिष्य आए। जिनमें नन्दकुमार(देहली), किरण देशपाण्डे(भोपाल), विजयकृष्ण(देहरादून, वर्तमान में नैनीताल), प्रभाकर देशपाण्डे आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। वर्तमान में उस्ताद शेख दाउद के पुत्र शब्बीर दाउद(हैदराबाद) उनकी परम्परा को आगे बढ़ा रहे हैं।

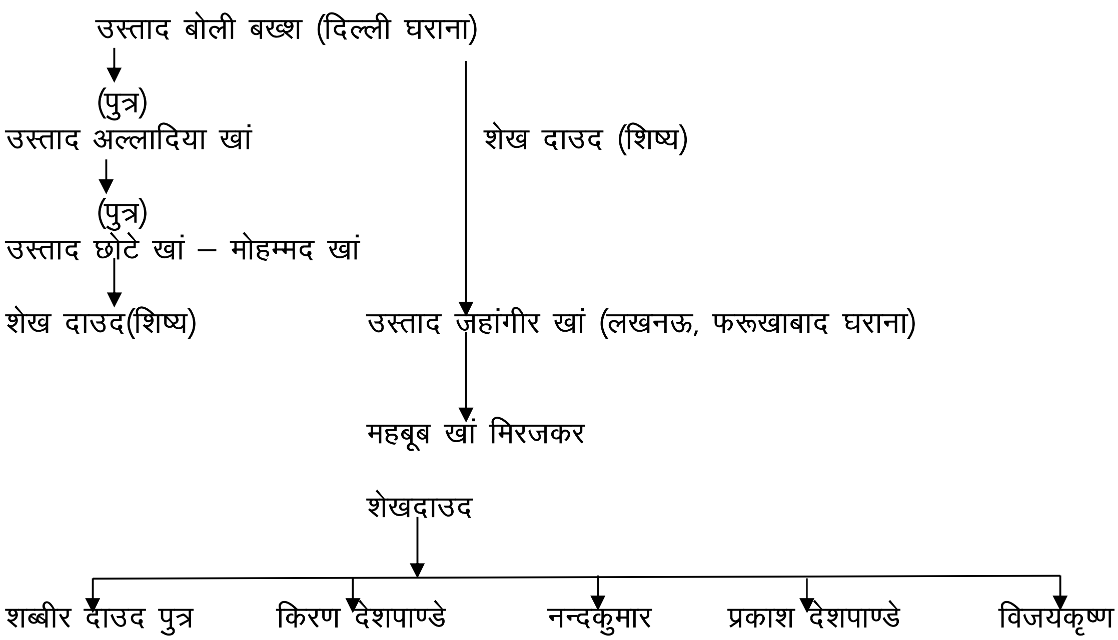

<u>मृत्यु</u> – शेख दाउद ने 21 मार्च 1992 को हैदराबाद में अन्तिम सांस ली।

4.5 उ0 लतीफ अहमद खां

जन्म – उस्ताद लतीफ अहमद खां का जन्म देहली के संगीत परिवार में सन् 1942 में हुआ, अतः आपका सम्बन्ध देहली घराने से हो गया।

परिवार, संगीत शिक्षा एवं संगीत यात्रा – प्रसिद्ध सारंगी वादक उस्ताद बुन्दू खां आपके नाना थे। लतीफ अहमद की तबला वादन की शिक्षा आरम्भ में उस्ताद गामी खां साहब से हुई जो कि मियां काले बख्श उर्फ छोटे काले खां के पुत्र थे। इसके पश्चात् लतीफ अहमद खां ने उस्ताद गामी खां के पुत्र उस्ताद इनाम अली से तबले की शिक्षा प्राप्त की।

उ0 लतीफ अहमद खां का तबला वादन बहुत मधुर था। इन्होंने 'तिट' एवं 'तिरकिट' बोल पर कठिन परिश्रम कर पूर्ण अधिकार प्राप्त किया था तथा इनके द्वारा बजाया गया देहली का प्रसिद्ध कायदा 'धातिटधा तिटधाधा तिटधागे तिनाकिन' में विशेष आकर्षण था। देहली कोमल एवं बन्द बाज माना जाता है जिसको नृत्य की संगति के लिए अधिक उपयुक्त नहीं समझा जाता है। परन्तु उस्ताद लतीफ अहमद खां देहली घराने के प्रथम ऐसे तबला वादक थे जो कत्थक नृत्य की कुशल संगति किया करते थे। इनके समय के नृत्यकार पं0 बिरजू महाराज, दुर्गालाल, पं0 देवीलाल, सुश्री उमा शर्मा, सितारा देवी आदि के साथ आपने देश विदेश में कार्यक्रम प्रस्तुत किए। उस्ताद लतीफ अहमद खां, तबला बायां को भी दाहिने तबले स्वर के साथ मन्द्र सप्तक के 'सा' स्वर से मिलाया करते थे जिससे दाएं तथा बाएं तबले के बोलों में मधुरता आया करती थी। उस्ताद लतीफ अहमद खां तबला वादन की चारों विधाओं–एकल वादन, गायन संगति, वाद्य संगति तथा नृत्य की संगति में निपुण थे। इन्होंने अपने समय के प्रसिद्ध संगीतज्ञों सितार वादक पं0 निखिल बनर्जी, सितार वादक उस्ताद इमरत खां, सरोद वादक उस्ताद अमजद अली खां, पं भीमसेन जोशी के साथ तबला संगति की। विदेशों में भी आपके एकल वादन तथा तबला संगति के कार्यक्रम हुए। विदेशों में समय–समय पर आप तबला वादन की शिक्षा भी दिया करते थे। उस्ताद लतीफ खां पारम्परिक तबला वादन के अतिरिक्त तबला वादन को वर्तमान परिपेक्ष में सोचते थे। इसी क्रम में इन्होंने सवा पांच मात्रा की लतीफ ताल की रचना भी की थी तथा सभी सम एवं विषम मात्रओं की तालों को भी सुगमता से प्रस्तुत करते थे।

उस्ताद लतीफ अहमद खां से उस समय के सभी युवा कलाकारों ने प्रेरणा प्राप्त की। इनमें मुख्य रूप से देहली के उस्ताद छम्मा खां के पुत्र उस्ताद शफात हुसैन थे जिन्होंने अपनी वादन शैली को उ0 लतीफ अहमद खां की वादन शैली को आदर्श मानकर विकसित की थी तथा उस्ताद शफात हुसैन भी उस्ताद लतीफ अहमद की तरफ चौमुखी तबला वादक प्रतिष्ठित हुए थे।

शिष्य परम्परा – इनके प्रमुख शिष्यों में ग्लैडविन चार्ल्स का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उस्ताद लतीफ अहमद खां के दो पुत्र अकबर खां तथा बाबर खां उनकी परम्परा को आगे बढ़ा रहे हैं।

मृत्यु – उस्ताद लतीफ अहमद खां को बहुत लम्बे समय तक संगीत की सेवा का अवसर नहीं मिल पाया तथा मात्र सैंतालिस वर्ष की उम्र में ही सन 1989 में आपका देहान्त हो गया। देहली घराने के ऐसे कलाकार के निधन से संगीत जगत को अपूर्णीय क्षति हुई।

4.6 पं0 बीरू मिश्र

जन्म – पं0 बीरू मिश्र का जन्म बनारस में सन् 1896 में हुआ था।

परिवार, संगीत शिक्षा एवं संगीत यात्रा – आपके पिता पं0 भगवानदास, पं0 विश्वनाथ के पुत्र थे। पं0विश्वनाथ, गौरी सहाय के शिष्य थे जो कि बनारस घराने के संस्थापक पं0 राम सहाय के पुत्र थे। अतः पंडित बीरू मिश्र का सम्बन्ध पण्डित गौरी सहाय की परम्परा से था। पं0 बीरू मिश्र की तबला वादन की शिक्षा अपने पिता भगवादास से आरम्भ हुई। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात आप लखनऊ के उस्ताद आबिद हुसैन के शिष्य हो गए जहां उन्हें लखनऊ बाज का ज्ञान प्राप्त हुआ। पं0 बीरू मिश्र की तबला सीखने की जिज्ञासा के कारण आप बाद में उस्ताद छन्नू खां(बरेली) के भी शिष्य हुए। उस्ताद छन्नु खां फरूखाबाद घराने के संस्थापक उस्ताद हाजी विलायत अली के शिष्य थे। इस प्रकार बीरू

मिश्र को उस्ताद छन्नू खां से फरूखाबाद बाज का भी ज्ञान प्राप्त हुआ तथा आपको सम्पूर्ण पूरब पर अधिकार प्राप्त हो गया। लखनऊ, फरूखाबाद तथा बनारस घराने, पूरब घराने के अन्तर्गत ही आते हैं। पंडित बीरू मिश्र एक ऐसे कलाकार थे जिन्होंने लखनऊ, फरूखाबाद तथा बनारस घराने की विधिवत शिक्षा प्राप्त की थी। उस्ताद जहांगीर खां(इन्दौर), उस्ताद छन्नू खां के शिष्य थे एवं पण्डित बीरू मिश्र के गुरू भाई भी थे। पंडित बीरू मिश्र उस्ताद जहांगीर खां से भी समय–समय पर तबले की रचनाएं प्राप्त करते रहते थे।

पंडित बीरू मिश्र का हाथ बहुत तैयार तथा मीठा था। प्रत्येक संगीतज्ञ इनके साथ गाने–बजाने के सहज एवं गर्व महसूस किया करते थे। नेपाल के महाराज ने इनके तबला वादन से प्रभावित होकर इनको नेपाल दरबार में आंमत्रित किया था तथा बाद में सभासद नियुक्त कर दिया।

शिष्य परम्परा – इनके प्रमुख शिष्यों में इनके दामाद पन्ना, नन्दजी, मास्टर मोहन, नरोत्तम प्रसाद, वासुदेव प्रसाद, कालीपाद शर्मा, बंचन प्रसाद, रवि मोहत्त, जालया मिश्र आदि विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

मृत्यु – संगीत जगत को पण्डित बीरू मिश्र के तबला वादन का अधिक समय तक लाभ नहीं मिल सका। पं0 बीरू मिश्र की चालीस वर्ष की अल्प आयु में सन् 1936 में नेपाल में देहान्त हो गया।

अभ्यास प्रश्न–

1. उस्ताद आबिद हुसैन के पिता का नाम क्या था?
2. उस्ताद आबिद हुसैन का सम्बन्ध किस घराने से था?
3. उस्ताद आबिद हुसैन के भतीजा व दामाद का नाम क्या था?
4. उस्ताद शेख दाउद का जन्म कहाँ और कब हुआ?
5. उस्ताद शेख दाउद का सम्बन्ध किन–किन घरानों से था?
6. उस्ताद शेख दाउद का निधन किस सन में हुआ?
7. उस्ताद लतीफ अहमद खां किस घराने के थे?
8. उस्ताद लतीफ अहमद खां के गुरू कौन थे?
9. उस्ताद लतीफ अहमद खां का जन्म तथा मृत्यु कब हुई?
10. पंडित बीरू मिश्र का जन्म कब और कहां हुआ?

4.7 सारांश

इस इकाई के माध्यम से आप तबला वादकों के जीवन के विभिन्न पहलुओं से अवगत हुए। इस इकाई में आपने लखनऊ, फरूखाबाद, देहली, बनारस आदि घरानों के तबला वादकों के जीवन वृत के बारे में जानकारी प्राप्त की। ये सभी कलाकार प्रेरणा के स्त्रोत हैं जिन्होंने कठिन परिश्रम से तबला वादन में ऊंचाइयों को प्राप्त किया था। इन सबके जीवन वृत से इनके धैर्य से तबला सीखने तथा अपने गुरू के प्रति निष्ठावान होने का भी परिचय मिलता है, जो कि वर्तमान तबला विद्यार्थियों के लिए एक संदेश है। इस इकाई के माध्यम से आपने तबला वादकों के जीवन परिचय से जाना कि इन्होंने किस प्रकार संघर्ष करके तबला वादन की शिक्षा ग्रहण की तथा कठिन परिश्रम तथा लगन के कारण ही उनको प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। उ0 शेख दाउद को छोड़कर सभी ने संगीत परिवार में जन्म लिया था परन्तु इसके बावजूद उस्ताद शेख दाउद ने अपनी प्रतिभा को संगीत जगत में प्रतिष्ठित कराया जो की उनकी कठिन परिश्रम एवं लगन का परिणाम था। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप उपरोक्त तबला वादकों के जीवन से प्रेरणा लेंगे तथा औरों को भी प्रेरित करेंगे।

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. मोहम्मद खां	2. लखनऊ	3. उस्ताद वाजिद हुसैन खां
4. शोलापुर (महाराष्ट्र) 1916	5. देहली, लखनऊ, फरूखाबाद	6. 1992
7. दिल्ली घराना	8. उस्ताद गामी खां, उस्ताद इनाम अली	9. जन्म– 1942, मृत्यु–1989

10. 1896, बनारस

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हमारे संगीत रत्न, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. मिस्त्री, आबान ई0, पखावज और तबला के घराने एवं परम्पराएं, स्वर साधना समिति, एनेक्स जम्बुलबाडी, मुम्बई।

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उ0 आबिद हुसैन, उ0 शेख दाउद, उ0 लतीफ अहमद एवं पं0 बीरू मिश्र के योगदान पर विस्तृत चर्चा कीजिए।

इकाई 5 – पाठ्यक्रम की तालों रूपक, तिलवाड़ा एवं झूमरा ताल का परिचय एवं बोल समूह द्वारा ताल पहचानना; पाठ्यक्रम की तालों रूपक, तिलवाड़ा एवं झूमरा ताल के ठेके को दुगुन, तिगुन, चौगुन एवं आड़ लयकारी सहित लिपिबद्ध करना।

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्‌देश्य

5.3 तालों का परिचय

- 5.3.1 रूपक ताल का परिचय
- 5.3.2 तिलवाड़ा ताल का परिचय
- 5.3.3 झूमरा ताल का परिचय

5.4 तालों को लयकारीयों में लिखना

- 5.4.1 रूपक ताल को विभिन्न लयकारीयों में लिखना
- 5.4.2 तिलवाड़ा ताल को विभिन्न लयकारीयों में लिखना
- 5.4.3 झूमरा ताल को विभिन्न लयकारीयों में लिखना

5.5 सारांश

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम बी0ए0एम0टी0(एन0)–301 की पांचवी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप भारतीय संगीत के इतिहास तथा विभिन्न कालों में प्रयुक्त होने वाले अवनद्य वाद्यों के विषय में जान चुके होंगे। आप विद्वान संगीतज्ञों के महत्वपूर्ण योगदान तथा उनकी संगीत साधना के प्रति लगन एवं परिश्रम को भी जान चुके होंगे।

इस इकाई में पाठ्यक्रम की तालों का परिचय व उनके ठेकों को विभिन्न लयकारी जैसे दुगन, तिगुन, चौगुन व आड में लिपिबद्ध करने के विषय में बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप पाठ्यक्रम की तालों के ठेकों एवं उनको विभिन्न लयकारी में लिपिबद्ध करने के विषय में जान सकेंगे। इससे आप लयकारी को बोलने एवं बजाने में भी सक्षम होंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

1. पाठ्यक्रम की तालों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
2. लयकारी का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
3. तबले की ताल के ठेकों को विभिन्न लयकारी में लिपिबद्ध करने एवं उसके क्रियात्मक स्वरूप को तबले में प्रस्तुत कर पाएंगे।
4. लयकारी का प्रयोग अपने एकल वादन एवं संगत करने में सक्षम होंगे जिससे आपका वादन प्रभावशाली होगा।

5.3 तालों का परिचय

<u>5.3.1 रूपक ताल का परिचय</u> – यह तीन विभाग में विभक्त सात मात्रा की विषम पदीय ताल है। यह उत्तर भारतीय ताल पद्धति की ऐसी ताल है जिसकी पहली मात्रा पर सम के स्थान पर खाली दिखाई जाती है, जो कि एक अपवाद है क्योंकि सम एवं ताली पहली मात्रा पर ही मानी जाती है। इस ताल का प्रयोग शास्त्रीय संगीत की रचनाओं एवं सुगम संगीत भजन, गीत एवं गज़ल में किया जाता है। रूपक ताल में एकल वादन भी किया जाता है। इसका प्रयोग मध्य लय में ही करना अधिक उचित माना जाता है। इसकी 7 मात्राएं 3/2/2 विभागों में बँटी हैं। इसमें पहला विभाग तीन मात्रा एवं दूसरा एवं तीसरा विभाग दो–दो मात्रा का है। चौथी एवं छठी मात्रा पर ताली एवं पहली मात्रा पर खाली है। इसकी संरचना निम्न प्रकार हैः–

मात्रा – 7, विभाग – 3, ताली – 4 व 6 पर, खाली – 1 पर

<u>ठेका</u>

ती	ती	ना	धी	ना	धी	ना	ती
0			2		3		0

5.3.2 तिलवाडा ताल का परिचय – तिलवाड़ा ताल का प्रयोग केवल ख्याल गायन की विलम्बित रचना, बड़े ख्याल के लिए किया जाता है। एकल वादन में इसका प्रयोग नहीं किया जाता है। यह समपदीय ताल है। इसकी 16 मात्राएं 4/4/4/4 विभागों में बँटी हैं। इसके सभी विभाग चार–चार मात्राओं के हैं। पहली, पांचवी एवं तेरहवीं मात्रा पर ताली एवं नवीं मात्रा पर खाली है। इसकी संरचना निम्न प्रकार हैः–

मात्रा – 16, विभाग – 4, ताली – 1, 5 व 13 पर, खाली – 9 पर

ठेका

धा तिरकिट धिं धिं	धा धा तिं तिं	ता तिरकिट धिं धिं	धा धा धिं धिं	धा
×	2	0	3	×

5.3.3 झूमरा ताल का परिचय – यह तबले का ताल है। इस ताल की संरचना दीपचन्दी की भांति है परन्तु इस ताल का प्रयोग दीपचन्दी से भिन्न है। झूमरा ताल का प्रयोग शास्त्रीय गायन के विलम्बित ख्याल के साथ किया जाता है। इस ताल का प्रयोग विलम्बित लय में ही किया जाता है, मध्य एवं द्रुत लय में इस ताल के प्रयोग का प्रचलन नहीं है। एकल वादन का प्रचलन इस ताल में नहीं है किन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार पुराने तबला वादकों द्वारा इसमें कभी–कभी स्वतन्त्र वादन भी प्रस्तुत किया गया है।

यह मिश्र जाति की अर्द्ध समपदीय ताल है। इसकी 14 मात्राएं 3/4/3/4 विभागों में बँटी हैं। इसमें पहला एवं तीसरा विभाग तीन–तीन मात्रा एवं दूसरा एवं चौथा विभाग चार–चार मात्रा का है। पहली, चौथी एवं ग्यारवीं मात्रा पर ताली एवं आठवीं मात्रा पर खाली है। इसकी संरचना निम्न प्रकार हैः–

मात्रा – 14, विभाग – 4, ताली – 1, 4 व 11 पर, खाली – 8 पर

ठेका

धिं ऽधा तिरकिट	धिं धिं धागे तिरकिट	तिं ऽता तिरकिट	धिं धिं धागे तिरकिट	धिं
×	2	0	3	×

5.4 तालों को लयकारीयों में लिखना

लयकारी – समय की समान गति को लय कहते हैं। दो मात्राओं की क्रिया के मध्य होने वाला विश्रांति काल ही लय है और जब यह काल प्रयोग होने वाली मात्राओं के बीच समान रहता है तो वह निश्चित लय का स्वरूप ले लेता है। अतः लय का सम्बन्ध मात्रा एव मात्राओं के बीच के समय से है।

लय सामान्य रूप से तीन प्रकार की मानी गई हैं– विलम्बित, मध्य एवं द्रुत लय। काल के लम्बा होने पर विलम्बित लय स्थापित होती है। इस काल के कम होने पर मध्य लय एवं उससे अधिक कम होने पर द्रुत लय हो जाती है। सामान्य रूप से मध्य लय का विश्रांति समय विलम्बित लय के विश्रांति समय का आधा होता है एवं द्रुत लय का विश्रांति समय मध्य लय के विश्रांति समय का आधा होता है। संगीत में यह मान्यता स्थापित हो चुकी है एवं प्रचलन में है। विलम्बित लय को आधार लय मानने से मध्य लय का प्रयोग विलम्बित लय में दो बार एवं द्रुत लय का प्रयोग चार बार करने की आवश्यकता होगी। अतः मध्य लय विलम्बित लय की दुगुनी, द्रुत लय मध्य लय की दुगुन होती है। लय का यही प्रयोग लयकारी कहलाता है। एक मात्रा में एक से अधिक मात्राओं का आधार लय के साथ प्रयोग लयकारी कहलाता है।

संगीत में विभिन्न लयकारी जैसे दुगुन, तिगुंन, चौगुन, आड, कुआड एवं बिआड प्रयोग की जाती हैं।

दुगुन – एक मात्रा में दो मात्रा — 1 2 ‿ 1 2 ‿

तिगुन – एक मात्रा में तीन मात्रा — 1 2 3 ‿ 123 ‿

चौगुन – एक मात्रा में चार मात्रा — 1234 ‿ 1234 ‿

आड़ – एक मात्रा में डेढ़ मात्रा अथवा दो मात्रा में तीन मात्रा को आड़ लयकारी कहा जाता है। इसे डयोढ़ी लय भी कहते हैं एवं इसको 3/2 की लयकारी के रूप में व्यक्त करते हैं। — 1 ऽ 2 ‿ ऽ 3 ऽ ‿

कुआड़– इस लयकारी के विषय में दो मत हैं 1. आड़ की आड़ को कुआड़ कहते हैं अतः 9/4 जिसके अनुसार चार मात्रा में नौ मात्रा अथवा एक मात्रा में $2\frac{1}{4}$ अथवा सवा दो मात्रा का प्रयोग करते हैं। 2. 5/4 की लयकारी अर्थात चार मात्रा में पांच मात्रा अथवा एक मात्रा में सवा मात्रा। इस दूसरे मत का अधिक प्रचलन है एवं इसको सवागुन की लय भी कहते हैं।

पहले मत के अनुसार–:

1ऽ ऽ ऽ 2ऽ ऽ ऽ 3 ‿ ऽ ऽ ऽ 4 ऽऽ ऽ 5 ऽ ‿ ऽ ऽ 6 ऽ ऽ ऽ 7 ऽ ऽ ‿ ऽ 8 ऽ ऽ ऽ 9 ऽ ऽ ऽ ‿

1 2 3 4

दूसरे मत के अनुसार :–

1 ऽ ऽ ऽ 2 ‿ ऽ ऽ ऽ 3 ऽ ‿ ऽ ऽ 4 ऽ ऽ ‿ ऽ 5 ऽ ऽ ऽ ‿

1 2 3 4

बिआड़ – इस लयकारी के विषय में भी दो मत हैं। एक मत के अनुसार कुआड़ लय की आड़, बिआड़ लयकारी होती, जिसे $^9/_4 \times {}^3/_2 = \frac{27}{8}$ के रूप में व्यक्त करते हैं। दूसरे मत के अनुसार $^7/_4$ की लयकारी बिआड़ की लयकारी है। इसमें एक मात्रा में पौने दो गुन मात्रा प्रयोग की जाती है जिसे पौने दो गुन की लयकारी भी कहते हैं।

पहले मत के अनुसार :–

1ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 2 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 3 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 4 ऽ ऽ ‿

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 5 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 6 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 7 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ‿

ऽ ऽ 8 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 9 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 10 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 11 ‿

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 12 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 13 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 14 ऽ ऽ ऽ ‿

ऽ ऽ ऽ ऽ 15 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 16 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 17 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ‿

ऽ ऽ 18 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 19 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 20 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 21 ऽ ‿

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 22 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 23 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 24 ऽ ऽ ऽ ऽ ‿

ऽ ऽ ऽ 25 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 26 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 27 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ‿

दूसरे मत के अनुसार :–

1 ऽ ऽ ऽ 2 ऽ ऽ , ऽ 3 ऽ ऽ ऽ ऽ 4 ऽ , ऽ ऽ 5 ऽ ऽ ऽ 6 , ऽ ऽ ऽ 7 ऽ ऽ ऽ

कुआड़ एवं बिआड़ में दूसरा मत ही अधिक प्रचलित एवं व्यवहारिक है, अतः लयकारी लिपिबद्ध करने में दूसरे मत का ही प्रयोग करेंगे। आड़, कुआड़ एवं बिआड़ लयकारी लिखने के लिए इनकी भिन्न अथवा बटे में दिखाई संख्या से भाग देते हैं। गणित के अनुसार भाग देने में बटे की संख्या उलटी हो कर गुणा में बदल जाती है।

उदाहरण आड़ की बट्टा संख्या 3/2 = $1\frac{1}{2}$

आड़ **लयकारी की मात्रा संख्या =** ताल की मात्रा × 2/3, किस मात्रा से आरम्भ की जानी है, इसके लिए ऊपर की संख्या को ताल की मात्रा संख्या से घटाते हैं।

ताल की मात्रा संख्या = ताल की भाग संख्या × 2/3 जो लयकारी लिखनी है। उसमें बट्टा के नीचे वाली राशी में से एक घटाकर उतनी संख्या के अवग्रह लगाते हैं।

उदाहरण– आड़ की लयकारी – $^3/_2 =$ 2–1= 1

कुआड़ की लयकारी– $^5/_4 = 4 - 1 = 3$

बिआड़ की लयकारी – $^7/_4 = 4 - 1 = 3$

अतः आड़ की लयकारी को मात्रा के साथ एक अवग्रह, कुआड़ एवं बिआड़ की लयकारी में तीन अवग्रह लगाते हैं। इसके पश्चात बट्टा की ऊपर वाली राशि में विभाग बना लेते हैं। सरलता के लिए पीछे से विभाग बनाना शुरू करते हैं एवं पहली मात्रा में जितनी मात्रा कम होती हैं, मात्रा से पहले उतने अवग्रह लगा देते हैं जो कि आप विभिन्न तालों में लयकारी के उदाहरण से समझेंगे।

5.4.1 रूपक ताल को विभिन्न लयकारीयों में लिखना :–

रूपक ताल

मात्रा – 7, विभाग – 3, ताली – 4 व 6 पर, खाली – 1 पर

ठेका

ती	ती	ना	धी	ना	धी	ना	ती
0			2		3		0

रूपक ताल की दुगुन :–

तीती	नाधी	नाधी	नाती	तीना	धीना	धीना	ती
0			2		3		0

रूपक ताल की दुगुन एक आवर्तन में :–

1ती	तीना	धीना	धीना	ती
2		3		0

रूपक ताल की तिगुन :–

तीतीना	धीनाधी	नातीती	नाधीना	धीनाती	तीनाधी	नाधीना	ती
0			2		3		0

रूपक ताल की तिगुन एक आवर्तन में :—

12ती	तीनाधी	नाधीना	ती
	3		0

रूपक ताल की चौगुन :—

तीतीनाधी	नाधीनाती	तीनाधीना	धीनातीती	नाधीनाधी	नातीतीना	धीनाधीना	ती
0			2		3		0

रूपक ताल की चौगुन एक आवर्तन में :—

1तीतीना	धीनाधीना	ती
3		0

रूपक ताल की आड लयकारी :—

ती	ती	1तीऽ	तीऽना	ऽधीऽ	नाऽधी	ऽनाऽ	ती
0			2		3		0

5.4.2 तिलवाडा ताल को विभिन्न लयकारीयों में लिखना :—

तिलवाडा ताल

मात्रा — 16, विभाग — 4, ताली — 1,5 व 13 पर, खाली — 9 पर

ठेका

धा	तिरकिट	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	तिरकिट	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा
×				2				0				3				×

तिलवाडा ताल की दुगुन :—

धातिरकिट	धिंधिं	धाधा	तिंतिं	तातिरकिट	धिंधिं	धाधा	धिंधिं	
×				2				
धातिरकिट	धिंधिं	धाधा	तिंतिं	तातिरकिट	धिंधिं	धाधा	धिंधिं	धा
0				3				×

तिलवाडा ताल की दुगुन एक आवर्तन में :— 8वीं मात्रा से शुरू होगी।

धातिरकिट	धिंधिं	धाधा	तिंतिं	तातिरकिट	धिंधिं	धाधा	धिंधिं	धा
0				3				×

तिलवाडा ताल की तिगुन :—

धातिरकिटधिं	धिंधाधा	तिंतिंता	तिरकिटधिंधिं	धाधाधिं	धिंधातिरकिट	धिंधिंधा	धातिंतिं	
×				2				
तातिरकिटधिं	धिंधाधा	धिंधिंधा	तिरकिटधिंधिं	धाधातिं	तिंतातिरकिट	धिंधिंधा	धाधिंधिं	धा
0				3				×

तिलवाडा ताल की तिगुन एक आवर्तन में :—

ऽऽधा	तिरकिटधिंधिं	धाधातिं	तिंतातिरकिट	धिंधिंधा	धाधिंधिं	धा
		3				×

तिलवाडा ताल की चौगुन :–

धातिरकिटधिंधिं	धाधातिंतिं	तातिरकिटधिंधिं	धाधाधिंधिं	धातिरकिटधिंधिं	धाधातिंतिं	तातिरकिटधिंधिं	धाधाधिंधिं	
×				2				
धातिरकिटधिंधिं	धाधातिंतिं	तातिरकिटधिंधिं	धाधाधिंधिं	धातिरकिटधिंधिं	धाधातिंतिं	तातिरकिटधिंधिं	धाधाधिंधिं	धा
0				3				×

तिलवाडा ताल की चौगुन एक आवर्तन में :–

धातिरकिटधिंधिं	धाधातिंतिं	तातिरकिटधिंधिं	धाधाधिंधिं	धातिरकिटधिंधिं	धाधातिंतिं	तातिरकिटधिंधिं	धाधाधिंधिं	धा
0				3				×

तिलवाडा ताल की आड लयकारी :–

1	2	3	4	5	ऽधाऽ	तिरकिटधिं	ऽधिंऽ	
×				2				
धाऽधा	ऽतिंऽ	तिंऽता	ऽतिरकिट	धिंऽधिं	ऽधाऽ	धाऽधिं	ऽधिंऽ	धा
0				3				×

5.4.3 झूमरा ताल को विभिन्न लयकारीयों में लिखना :–

झूमरा ताल

मात्रा – 14, विभाग – 4, ताली – 1, 4 व 11 पर, खाली – 8 पर

ठेका

धिं	ऽधा	तिरकिट	धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तिं	ऽता	तिरकिट	धिं	धिं	धागे	तिरकिट	धिं
×			2				0			3				×

झूमरा ताल की दुगुन :–

धिंऽधा	तिरकिटधिं	धिंधागे	तिरकिटतिं	ऽतातिरकिट	धिंधिं	धागेतिरकिट	
×			2				
धिंऽधा	तिरकिटधिं	धिंधागे	तिरकिटतिं	ऽतातिरकिट	धिंधिं	धागेतिरकिट	धिं
0			3				×

झूमरा ताल की दुगुन एक आवर्तन में :–

धिंऽधा	तिरकिटधिं	धिंधागे	तिरकिटतिं	ऽतातिरकिट	धिंधिं	धागेतिरकिट	धिं
0			3				×

झूमरा ताल की तिगुन :–

धिंऽधातिरकिट	धिंधिंधागे	तिरकिटतिंऽता	तिरकिटधिंधिं	धागेतिरकिटधिं	ऽधातिरकिटधिं	धिंधागेतिरकिट	
×			2				
तिंऽतातिरकिट	धिंधिंधागे	तिरकिटधिंऽधा	तिरकिटधिंधिं	धागेतिरकिटतिं	ऽतातिरकिटधिं	धिंधागेतिरकिट	धिं
0			3				×

झूमरा ताल की तिगुन एक आवर्तन में :–

1धिंऽधा	तिरकिटधिंधिं	धागेतिरकिटतिं	ऽतातिरकिटधिं	धिंधागेतिरकिट	धिं
	3				×

झूमरा ताल की चौगुन :–

धिंऽधातिरकिटधिं	धिंधागेतिरकिटतिं	ऽतातिरकिटधिंधिं	|	
×				
धागेतिरकिटधिंऽधा	तिरकिटधिंधिंधागे	तिरकिटतिंऽतातिरकिट	धिंधिंधागेतिरकिट	|
2				
धिंऽधातिरकिटधिं	धिंधागेतिरकिटतिं	ऽतातिरकिटधिंधिं	|	
0				
धागेतिरकिटधिंऽधा	तिरकिटधिंधिंधागे	तिरकिटतिंऽतातिरकिट	धिंधिंधागेतिरकिट	| धिं
3				×

झूमरा ताल की चौगुन एक आवर्तन :–

12धिंऽधा	तिरकिटधिंधिंधागे	तिरकिटतिंऽतातिरकिट	धिंधिंधागेतिरकिट	| धिं
3				×

झूमरा ताल की आड़ लयकारी :–

12धिं	ऽऽधा	तिरकिटधिं |	ऽधिंऽ	धागेतिर	किटतिंऽ |	ऽतातिर	किटधिंऽ	धिंऽधा	गेतिरकिट |	धिं
			0			3				×

अभ्यास प्रश्न

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. तिलवाड़ा ताल का प्रयोग केवल ख्याल गायन की .... रचना के लिए किया जाता है।
2. .... लयकारी को 3/2 की लयकारी के रूप में व्यक्त करते हैं।
3. झूमरा ताल.............. वाद्य की ताल है।
4. झूमरा .... जाति की ताल है।
5. रूपक ताल में पहली मात्रा पर सम के स्थान पर .... आती है।

5.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप पाठ्यक्रम की तालों को ठेकों एवं उनको विभिन्न लयकारी जैसे दुगन, तिगुन, चौगुन व आड में लिपिबद्ध करने के विषय में जान चुके होंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप लयकारी को भली–भांति समझ चुके होंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप लयकारी का प्रयोग अपने एकल वादन व संगत में करने में सक्षम होंगे जिससे आपका वादन प्रभावशाली होगा। इससे आप लयकारी को बोलने एवं बजाने में भी सक्षम होंगे। आप तबले की तालों के ठेकों को विभिन्न लयकारी में लिपिबद्ध करने एवं उसके क्रियात्मक स्वरूप को तबले में प्रस्तुत कर पाएंगे।

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. विलम्बित रचना 2. आड़ 3. तबला 4. मिश्र जाति 5. खाली

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वसन्त, *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. मिश्र, पं0 विजयशंकर, तबला पुराण।
3. श्रीवास्तव, श्री गिरीश चन्द्र, *ताल परिचय,* संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम की किन्हीं दो तालों का पूर्ण परिचय देते हुए उनके ठेकों को दुगुन, तिगुन, चौगुन व आड लयकारी सहित लिपिबद्ध कीजिए।

इकाई 6 – पाठ्यक्रम की तालों रूपक, तिलवाड़ा ताल एवं झूमरा ताल में तबले/पखावज की रचनाओं(पाठ्यक्रमानुसार) को लिपिबद्ध करना।

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 पाठ्यक्रम की तालों में तबले की रचनाएं
  6.3.1 रूपक ताल में रचनाएं
  6.3.2 तिलवाडा ताल में रचनाएं
  6.3.3 झूमरा ताल में रचनाएं
6.4 सारांश
6.5 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.6 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम बी0ए0एम0टी0(एन)—301 की छठीं इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप संगीत में प्रयोग होने वाली प्रचलित तालों का परिचय प्राप्त कर चुके होंगे। आप तालों की संरचना एवं उनके उपयोग को भी समझ गए होंगे, जिससे आप इनका सफल प्रयोग क्रियात्मक रूप में कर पाएंगे।

इस इकाई में आप तबला वादन में प्रयोग होने वाली रचनाओं एवं उनको लिपिबद्ध करने के विषय में अध्ययन करेंगे जिसके लिए इस इकाई में भातखण्डे काललिपि पद्धति का प्रयोग किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप तबले की किसी भी रचना को लिपिबद्ध कर भविष्य के सन्दर्भ हेतु सुरक्षित रख पाएंगे एवं इनको क्रियात्मक रूप में प्रस्तुत करने में सक्षम होंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :—

1. तबले की रचनाओं को लिपिबद्ध कर पाएंगे।
2. तबले की रचनाओं की लिपि को समझकर क्रियात्मक रूप में प्रस्तुत कर पाएंगे।
3. यह भी जान सकेंगे की एक ही रचना को मात्राओं के अनुसार किन—किन तालों में प्रयोग किया जा सकता है।

6.3 पाठ्यक्रम की तालों में तबले की रचनाएं

6.3.1 रूपकताल में रचनाएं :–

पाठ्यक्रम के अनुसार रूपक ताल विस्तृत अध्ययन की ताल है। इसमें उठान, पेशकार, दो कायदे, रेला, टुकड़ा, परन, चक्करदार(सादा), चक्करदार(फरमाइशी) एवं गत लिपिबद्ध कर प्रस्तुत की जा रही है।

ठेका

तिं	तिं	ना	धिं	ना	धिं	ना	तिं
0			2		3		0

उठान

धागेतिना	किऽनकतातिर	किटतकतिरकिट		
0				
तकतिरकिटतक	तिरकिटधाती	धाधा	धा	
2		3		
ऽ	तिरकिटधाती	धाधा		
0				
धा	ऽ	तिरकिटधाती	धाधा	तिं
2		3		0

पेशकार(मुख्य बोल)

धिंऽधिंता	ऽधाधिंता	धातीधाधा	
0			
तिंतातिऽ	तिंताऽता	धिंताधाती	धाधाधिंता
2		3	
तिंऽतिंता	ऽतााातिंता	तातीधाधा	
0			
धिंतातिऽ	धिंताऽता	धिंताधाती	धाधाधिंता
2		3	

पल्टा – 1

ऽधाधिंता	ऽधाधिंता	धातीधाधा	
0			
तिंताऽता	तिंताऽता	धिंताधाती	धाधाधिंता
2		3	

पल्टा – 2

धिंताऽधा	ऽधाधिंता	धातीधाधा	
0			
तिंतातिंता	ऽताऽता	धिंताधाती	धाधाधिंता
2		3	

पल्टा – 3

धातीधाधा	धिंताधिंता	धातीधाधा	
0			
तिंताताती	तातातिंता	धिंताधाती	धाधाधिंता

2 3

तिहाई

| धिंताधाती धाधातिंता धाऽधिंता |
0
| धातीधाधा तिंताधाऽ | धिंताधाती धाधातिंता | तिं
2 3 0

नोट–ः मुख्य बोल एवं प्रत्येक पल्टा दो–दो बार बजेगा।

कायदा–चतुरश्र जाति

| धातिरकिटधि तिटधिन धातीधिन |
0
| धातिरकिटधि तिटधिन | धातीधिन तिनाकिन |
2 3
| तातिरकिटति तिटकिन तातीकिन |
0
| धातिरकिटधि तिटधिन | धातीधिन धिनागिन |
2 3

पल्टा – 1

| धातीधिन धातिरकिटधि तिटधिन |
0
| धातिरकिटधि तिटधिन | धातीधिन तिनाकिन |
2 3
| तातीकिन तातिरकिटति तिटकिन |
0
| धातिरकिटधि तिटधिन | धातीधिन धिनागिन |
2 3

पल्टा – 2

| तिटधिन धातीधिन तिटधिन |
0
| धातिरकिटधि तिटधिन | धातीधिन तिनाकिन |
2 3
| तिटकिन तातीकिन तिटकिन |
0
| धातिरकिटधि तिटधिन | धातीधिन धिनागिन |
2 3

पल्टा – 3

| तिटधिन तिटधिन धातीधिन |
0
| धातिरकिटधि तिटधिन | धातीधिन तिनाकिन |
2 3
| तिटकिन तिटकिन तातीकिन |
0

धातिरकिटधि	तिटधिन	धातीधिन	धिनागिन
2		3	

तिहाई

धातीधिन	तिनाकिन	धाऽधाति		
0				
धिनतिना	किनधाऽ	धातीधिन	तिनकिन	तिं
2		3		0

कायदा–तिस्त्र जाति

धगेन	धातिरकिट	धगेन	
0			
धातिरकिट	धितिट	धिनति	नाकिन
2		3	
तकेन	तातिरकिट	तकेन	
0			
धातिरकिट	धितिट	धिनधि	नागिन
2		3	

कायदे की दुगुन

धगेनधातिरकिट	धगेनधातिरकिट	धितिटधिनति	
0			
नाकिनतकेन	तातिरकिटतकेन	धातिरकिटधितिट	धिनधिनागिन
2		3	

पल्टा – 1

धगेनधातिरकिट	धितिटधगेन	धातिरकिटधितिट	
0			
धगेनधातिरकिट	धितिटधगेन	धातिरकिटधितिट	धिनतिनाकेना
2		3	
तकेनतातिरकिट	तितिटतकेन	तातिरकिटतितिट	
0			
धगेनधातिरकिट	धितिटधगेन	धातिरकिटधितिट	धिनधिनागिन
2		3	

पल्टा – 2

धातिरकिटधितिट	धगेनधातिरकिट	धितिटधगेन	
0			
धगेनधातिरकिट	धिनधिनागेन	धातिरकिटधितिट	धिनतिनाकेना
2		3	
तातिरकिटधितिट	तकेनतातिरकिट	तितिटतकेन	
0			
धगेनधातिरकिट	धिनधिनागेन	धातिरकिटधितिट	धिनधिनागिन
2		3	

पल्टा – 3

| धातिरकिटधितिट धिनधिनागिन धातिरकिटधगेन |
0
| धातिरकिटधितिट धिनधिनागिन | धातिरकिटधितिट धिनतिनाकेना |
2 3
| तातिरकिटतितिट किनतिनाकिन तातिरकिटतकेन |
0
| धातिरकिटधितिट धिनधिनागिन | धातिरकिटधितिट धिनधिनागिन |
2 3

तिहाई

| धातिरकिटधितिट धिनतिनाकिन धाऽधातिरकिट |
0
| धितिटधिनति नाकिनधाऽ | धातिरकिटधितिट धिनतिनाकिन | तिं
2 3 0

रेला–मुख्य बोल

| धा धातिर किटतक |
0
| तिरकिट धातिर | किटतक तिरकिट |
2 3
| ता तातिर किटतक |
0
| तिरकिट धातिर | किटतक तिरकिट |
2 3

रेले की दुगुन

| धाधातिर किटतकतिरकिट धातिरकिटतक
0
| तिरकिटता तातिरकिटतक | तिरकिटधाति किटतकतिरकिट |
2 3

पल्टा – 1

| धातिरकिटतक तिरकिटधा धातिरकिटतक |
0
| तिरकिटतातिर किटतकतिरकिट | धाधातिर किटतकतिरकिट |
2 3
| तातिरकिटतक तिरकिटधा तातिरकिटतक |
0
| तिरकिटतातिर किटतकतिरकिट | धाधातिर किटतकतिरकिट |
2 3

पल्टा – 2

| तिरकिटधातिर किटतकतिरकिट धातिरकिटतक |
0
| तिरकिटधातिर किटतकतिरकिट | धातिरकिटतक तारिकिटतक |
2 3

| तिरकिटतातिर | किटतकतिरकिट | तातिरकिटतक |

0

| तिरकिटधातिर | किटतकतिरकिट | धातिरकिटतक | धातिरकिटतक |

2 3

पल्टा – 3

| धातिरकिटतक | तिरकिटधातिर | किटतकतिरकिट |

0

| धातिरकिटतक | तिरकिटधातिर | किटतकतिरकिट | तारिकिटतक |

2 3

| तातिरकिटतक | तिरकिटतातिर | किटतकतिरकिट | |

0

| धातिरकिटतक | तिरकिटधातिर | किटतकतिरकिट | धातिरकिटतक |

2 3

तिहाई

| तिरकिटधातिर | किटतकतिरकिट | धाऽतिरकिट |

0

| धातिरकिटतक | तिरकिटधाऽ | तिरकिटधातिर | किटतकतिरकिट | तिं

2 3 0

टुकडा

| दींदीं | तिटतिट | धागेतिट |

0

| ताकेतिट | कऽधातिट | कऽताऽ | धातिरकिटतक |

2 3

| तातिरकिटतक | ताकड़ान | धातातिर |

0

| किटतकता | कड़ानधा | तातिरकिटतक | ताकड़ान | तिं

2 3 0

परन

| धिटधिट | धागतिट | कऽधातिट |

0

| धागेतिट | कऽधातिट | कऽधातिट | कऽधातिट |

2 3

| धागेतिट | गदिगिन | नागेतिट |

0

| धागेतिट | ताकेतिट | कतिटत | किनताके |

2 3

| तिटकता | गदिगिन | धागेतिट |

0

| ताकेतिट | धित्ततगे | ऽगधित्त | तगेऽन |

2 3

धित्ता	तिरकिटधित्त	तगेऽन		
0				
धा	तगेऽन	धा	तगेऽन	
2		3		
धा	तिरकिटधित्त	तगेऽन		
0				
धा	तगेऽन	धा	तगेऽन	
2		3		
धा	तिरकिटधित्त	तगेऽन		
0				
धा	तगेऽन	धा	तगेऽन	तिं
2		3		0

चक्करदार(सादा)

धागेतिट	धागेतिट	ताकेतिट	
0			
ताकेतिट	कऽधातिट	ताकेतिट	गदीगिन
2		3	
नागेतिट	कतिटत	किनताके	
0			
तिटकता	गदीगिन	धा	तिटकता
2		3	
गदीगिन	धा	तिटकता	
0			
गदीगिन	धा	धागेतिट	धागेतिट
2		3	
ताकेतिट	ताकेतिट	कऽधातिट	
0			
ताकेतिट	गदीगिन	नागेतिट	कतिटत
2		3	
किनताके	तिटकता	गदीगिन	
0			
धा	तिटकता	गदिगिन	धा
2		3	
तिटकता	गदीगिन	धा	
0			
धागेतिट	धागेतिट	ताकेतिट	ताकेतिट
2		3	
कऽधातिट	ताकेतिट	गदीगिन	
0			
नागेतिट	कतिटत	किनताके	तिटकता
2		3	
गदीगिन	धा	तिटकता	

0				
गदीगिन	धा	तिटकता	गदीगन	ति
2		3		0

रूपकताल अथवा आड़ाचारताल में चक्करदार हेतु 18 मात्रा का तिहाई युक्त बोल जिसका 'धा' उन्नीसवीं मात्रा पर आएगा को तीन बार बजाने से चक्कदार बोल प्राप्त होगा जो कुल 56 मात्रा का होगा 18+1 = 19×3 = 56+1 = 57।

चक्करदार(फरमाइशी)

धिरधिरकिटतक	तकटधा	धिरधिरकिटतक		
0				
तकटधा	धिरधिरकत	धिरधिरकत	तकटधा	
2		3		
तकटधा	तिट	कता		
0				
गदी	गिन	कतधिरधिर	किटतकतकट	
2		3		
धाऽधिरधिर	किटतकतकट	धाऽधिरधिर		
0				
किटतकतकट	धा	धिरधिरकिटतक	तकटधा	
2		3		
धिरधिरकिटतक	तकटधा	धिरधिरकत		
0				
धिरधिरकत	तकटध	तकटधा	तिट	
2		3		
कता	गदी	गिन		
0				
कतधिरधिर	किटतकतकट	धाऽधिरधिर	किटतकतकट	
2		3		
धाऽधिरधिर	किटतकतकट	धा		
0				
धिरधिरकिटतक	तकटधा	धिरधिरकिटतक	तकटधा	
2		3		
धिरधिरकत	धिरधिरकत	तकटधा		
0				
तकटधा	तिट	कता	गदी	
2		3		
गिन	कतधिरधिर	किटतकतकट		
0				
धाऽधिरधिर	किटतकतकट	धाऽधिरधिर	किटतकतकट	तिं
2		3		0

6.3.2 तिलवाडा ताल में रचनाएं :–

पाठ्यक्रम के अनुसार यह अविस्तृत अध्ययन की ताल है। इस ताल में एकल वादन नहीं किया जाता। बल्कि यह ताल ख्याल गायकी के साथ प्रयोग की जाती है अतः इसके ठेके को विलम्बित लय में बजाने का अभ्यास करने की आवश्यकता है एवं अन्तिम मात्राओं में एक, दो एवं चार मात्रा में मुखड़ा बजाकर सम पर आना होता है।

मात्रा – 16, विभाग – 4, ताली – 1,5 व 13 पर, खाली – 9 पर

ठेका

धा तिरकिट धिं धिं	धा धा तिं तिं	ता तिरकिट धिं धिं	धा धा धिं धिं	धा
×	2	0	3	×

6.3.3 झूमरा ताल में रचनाएं :–

पाठ्यक्रम के अनुसार यह अविस्तृत अध्ययन की ताल है। इस ताल में एकल वादन नहीं किया जाता बल्कि यह ताल ख्याल गायकी के साथ प्रयोग की जाती है अतः इसके ठेके को विलम्बित लय में बजाने का अभ्यास करने की आवश्यकता है एवं अन्तिम मात्राओं में एक, दो एवं चार मात्रा में मुखड़ा बजाकर सम पर आना होता है।

ठेका

धिं ऽधा तिरकिट	धिं धिं धागे तिरकिट	तिं ऽता तिरकिट	धिं धिं धागे तिरकिट	धिं
×	2	0	3	×

6.4 सारांश

तबला वादन हेतु तबले की रचनाओं का ज्ञान आवश्यक है जो शिक्षक एवं प्राप्त पुस्तकों में रचनाओं से प्राप्त किया जा सकता है। इस इकाई में पाठ्यक्रम की तालों में विभिन्न रचनाएं लिपिबद्ध कर प्रस्तुत की गई हैं जिसमें भातखण्डे ताल पद्धति का प्रयोग किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस इकाई में दी गई सभी रचनाओं को तबले पर प्रयोग करने में सक्षम होंगे। पुस्तकों में भी तबले की रचनाएं प्राप्त होती हैं अतः इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप तबले की रचनाओं को पुस्तक से पढ़कर भी तबले पर बजा पाएंगे। इस इकाई से आप रचनाओं के विभिन्न तालों में प्रयोग के विषय में जान गए हैं जो कि आपको सफल तबला वादक बनने में सहायक होगा।

6.5 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मिस्त्री, डॉ0 आबान ई0, तबले की बन्दिशें।
2. पागलदास, रामशंकर, तबला कौमुदी।
3. मिश्र, पं0 छोटेलाल, ताल प्रसून।

6.6 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम की ताल में उठान, पेशकार, दो कायदे, 1 रेला, टुकड़ा, परन, चक्करदार (सादा), चक्करदार(फरमाइशी) एवं गत लिपिबद्ध कीजिए।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, जिला नैनीताल, पिनकोड–263139
फोन नं0 : 05946–286000 / 01 / 02
फैक्स नं0 : 05946–264232,
टोल फ्री नं0 : 18001804025
ई–मेल : **info@uou.ac.in**
वेबसाईट : **www.uou.ac.in**